अपूर्व

सिद्धान्त रत्नाकर

(प्रथम भाग)

लेखक :—

श्री १०८ श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी

हितैषी श्री स्वामी आत्मानन्द जी

प्रकाशक :—

श्यामबहादुर सिन्हा, बरेली

पुस्तक मिलने के पते :—

श्री गुलज़ारीलाल एडवोकेट, मानिक चौक, अलीगढ़

) श्री श्याम बहादुर सिन्हा, १८२, बमनपुरी (पच्छमी), बरेली

ोर } अनंत चतुर्दशी संवत् २०२० वि० { मूल्य

.० } (सन् १९६३ ई०) { [illegible]

ट—डाक व्यय २०० ग्राम (१७ तोले) व [illegible] आने पर

ही पुस्तक भेजी जा सकती है, अन्यथा नहीं।

अखण्डानन्द

संख्या

विषय

अपूर्व

सिद्धान्त रत्नाकर

प्रथम भाग की

अनुक्रमणिका रत्न रूप

पृष्ठाङ्क	नाम रत्न	अङ्क
१३	साधन सम्पद् प्रथम रत्न	(१)
४१	शास्त्रीय नियम द्वितीय रत्न	(२)
६९	तत्त्व शोधन तृतीय रत्न	(३)
१०१	अन्तरीय धारणा चतुर्थ रत्न	(४)

अवान्तर विभास सूची क्रम।

पृष्ठाङ्क	नाम विभास	अङ्क
१३	भव दोष दृष्टी-विभास	(१)
२१	साधन रूप-विभास	(२)
२७	सद्‌गुरु शरण-विभास	(३)
३४	मोक्ष मार्ग कर्त्तव्य-विभास	(४)
३९	विचार संसिद्धि विभास	(५)
४३	उत्तम रहस्य रूप-विभास	(६)
४८	श्रेष्ठ तत्त्व दर्शन-विभास	(७)
५३	माया विकार-विभास	(८)
५७	अज्ञान ज्ञान-विभास	(९)
६३	दृश्य बन्ध मोक्ष-विभास	(१०)
६९	वेदान्त प्रक्रिया-विभास	(११)
७६	उपदेश श्रवण विभास	(१२)
८१	आत्म ब्रह्म रूप-विभास	(१३)
८६	देवाँचन विधि-विभास	(१४)
९६	ब्रह्मात्म विशेषण-विभास	(१५)
१०१	ऐक्य मन्तव्य-विभास	(१६)
१०९	निदिध्यासन रूप विभास	(१७)
११३	असंगता प्रकार-विभास	(१८)
१२३	अवशिष्ट सिद्धान्त-विभास	(१९)
१२८	उत्तम विधान-विभास	(२०)

मुद्रक— जयभारत प्रेस बाँसफाटक वाराणसी

प्रस्तावना

वेद वेदान्त की अनेक संहिताओं (ग्रंथों) में से परिश्रम पूर्वक अद्भुत सिद्धान्तों को छाँटकर इस पुस्तक में यथोचित रीति से संग्रह किया है।

सर्व अर्थों की सिद्धी, युक्ति और प्रमाण से हो सकती है अतः (इस लिये) यथायोग्य मूल प्रमाण व प्रबल-प्रबल युक्तियों का इस पुस्तक में यथार्थ प्रतिपादन किया है। अनूठे भावों संयुक्त विशेष आनन्द दायक होने से यह पुस्तक उच्च श्रेणी सिद्धान्तों की खान है अतः इस पुस्तक का नाम, अपूर्व "सिद्धान्त रत्नाकर" नियत किया है।

इस पुस्तक में सात रत्न रक्खे गये हैं, एक-एक रत्न मध्य पाँच-पाँच विभास (प्रकाश) स्थित हैं अर्थात् सर्व पंचतीस (३५) विभास हैं इन में मोक्ष प्राप्ति का क्रम यथार्थ विधि से वर्णन किया है।

साधारण मनुष्य भी इस के विचार द्वारा सहज में परम तत्त्व को समझ कर वेद, वेदान्त के अर्थों को निश्चय करके कृतकृत्य हो सकता है।

प्रश्न व उत्तर के क्रम द्वारा इस पुस्तक की सम्पूर्ण व्याख्या की गई है कि अधिकारी सर्व भावों को यथार्थ समझ कर संशय व अज्ञान से रहित हुआ कैवल्य मुक्ति को सुगमता से प्राप्त हो।

इस पुस्तक के मध्य किसी प्रकार का मतमतान्तरों का पक्षपात व झगड़ा नहीं है किन्तु सरल रीति से वेदांत के रहस्यों को प्रचलित भाषा में लिखा है। जिसके विचार करने में कुछ कठिनाई व बाधा नहीं हो सकती।

अनेक मनुष्य साधनों को नहीं करके ब्रह्मज्ञान के पाने का प्रयत्न करते हैं, परिश्रम करते हुये भी उनको अभीष्टार्थ (ज्ञान) की प्राप्ति कठिन व असंभव ही होती है इस में कारण यह है कि वैदिक वा लौकिक कोई भी अर्थ साधन बिना प्राप्त नहीं हो सकता और सर्व शास्त्रों का भी यही सिद्धांत है। इस लिये अधिकारियों को प्रथम साधन अवश्य करने चाहिये।

इस पुस्तक के प्रथम भाग में साधनों का क्रम और द्वितीय भाग में ब्रह्मज्ञान व जीवन्मुक्ति आदि सिद्धान्त अर्थों को यथार्थ क्रम से लिखा है।

अतः मुमुक्षुओं को दोनों भाग क्रमपूर्वक विचारने चाहिये अर्थात् पहले साधन भाग पश्चात् साध्य (मुक्ति) भाग का अभ्यास करना उचित है।

पुस्तकालय
विषय
लोकहित - प्रन्यास

बहुत लोग साधन के समय असंगता को जनाते व कहते हैं, और सिद्धान्त (ज्ञान निष्ठा) काल से पश्चात मनोनाश आदि प्रथम के साधनों की कर्त्तव्यता मानते हैं। इस विपरीत (उल्टे) क्रम करने पर वह मनुष्य दोनों अर्थों से वंचित रह जाते हैं।

अनेक मनुष्य सिद्धान्त के प्रतिपादक वाक्यों को बर्ताव में और व्यवहार के कथन करने वाले शब्दों को ब्रह्मनिष्ठा (ज्ञानी) में जानते व कहते हैं इस विपरीत क्रम से अपार अवनति (हानि) होती है।

वेदान्त आदि शास्त्रों में तीन सत्ता (दृष्टि) लिखी हैं। इन्हीं के क्रमपूर्वक सम्पूर्ण वेदान्त अर्थों को निर्णय व निश्चय करना सार्थक होता है। जैसे हनुमान ने श्री रामजी के आगे अपना अनुभव प्रगट किया है कि ज्ञान दृष्टि से तुम व हम एक व शास्त्र दृष्टि से तुम ईश्वर मैं अंश रूप जीव हूँ और लौकिक रीति से तुम स्वामी मैं दास हूँ। इसी भाँति वेदान्त के सर्व वाक्यों में तीन सत्ता और अधिकारी का भेद मान करके यथार्थ भाव निश्चय हो सकता है।

इस समय सर्व साधन नहीं बन पड़ें तो दया, क्षमा, संतोष आदि शुद्धभावों (सदगुणों) को धारण करके पद पदार्थों को जाननेवाले अधिकारी अवश्यमेव कैवल्य मुक्ति के भागी हो सकते हैं। दया आदि को सर्व साधनों का मूल अष्टावक्र जी ने लिखा है।

अतः सुभागी को उचित है कि वेद व वेदान्त के यथार्त् सिद्धान्त से भरी हुई इस पुस्तक को अपनी शुद्ध बुद्धि से विचार कर अथवा निष्काम विद्वानों द्वारा सारार्थ को भली प्रकार समझ पुनः-पुनः अभ्यास कर मनुष्य जन्म को सफल करे।

इस पुस्तक में हर पृष्ठ पर पहले मूल प्रमाण व लकीर के नीचे उसका भावार्थ दोहों में और द्वितीय लकीर के नीचे मोटे अक्षरों में ऊपर की व्याख्या (टीका) की गई है।

जो संस्कृत प्रमाण नहीं पढ़ सकते वह दोहा से प्रमाण का अर्थ जान सकते हैं और दोहे के अर्थ समझने में असमर्थ मनुष्य नीचे लिखी भाषा के विचार द्वारा ऊपर का संपूर्ण भाव (अर्थ) भली प्रकार से समझ सकते हैं।

मूल श्लोकों को बराबर में अंक क्रम से वैसे ही दोहों को और इसी प्रकार अंकों की गिनती द्वारा भाषा टीका को सुगमता से मनुष्य पढ़ सकता है।

तीन काण्डो की व्यवस्था

वद व वेदान्त आदि शास्त्रों में कथन किये हुये कर्म उपासना और ज्ञान प्राप्ति का जैसा क्रम है सो नीचे लिखता हूँ।

अज्ञानी जीवों के हृदय में मल, विक्षेप और आवर्ण यह तीनों दोष होते हैं। इसका प्रत्यक्ष दृष्टान्त यह है कि जल से पूर्ण मिट्टी के पात्र में जैसे गन्धलापन व चंचलता और परदा होवे तब उसमें सूर्य का प्रतिबिम्ब कैसे पड़ सकता है ?

इस से पहले गंधलापन दूर किया जावे व वायु से बचा करके और परदा हटाकर सूर्य के सन्मुख रक्खा जावे तब उसमें ठीक-ठीक प्रतिबिम्ब सूर्य का पड़ सकता है। जैसे स्थूल शरीर रूप मिट्टी का पात्र व अंतःकरण रूप जल और ब्रह्मरूप सूर्य है अर्थात् निष्काम कर्मों के यथाविधि करने से अन्तःकरण (मन) शुद्ध होता है पुनः उपासना करते हुये विक्षेप (पदार्थों में राग) दूर होकर सद्गुरु द्वारा महावाक्य को सुनकर ब्रह्मअभ्यास होने पर तत्व ज्ञान प्राप्त होता है।

जब तक मन में बुरे भाव व खोटी प्रवृत्ति रहती है तब तक जानों उस मनुष्य में तीनों दोष विद्यमान हैं। खोटे कर्म व प्रवृत्ति को त्याग कर शुभ क्रियाओं के करते करते शेष अपने पुत्र व धन और स्त्री आदि पदार्थों से जब तक प्रेम रहता है तब तक उसके मनमें दो दोष रहजाते हैं परन्तु उपासना करने पर उन सर्व पदार्थों में अधिक राग नहीं रहता किन्तु उनको बन्धन रूप जानता है तब आत्म (स्वरूप) का आवर्ण (परदा) यह एक दोष रह जाता है वह ज्ञान से दूर होता है।

निष्काम कर्म व उपासना और ज्ञान की जब यथा क्रम से सिद्धि हो जाती है तो मनुष्य कैवल्य मुक्ति का पात्र बन जाता है। इस प्रकार वेद शास्त्रों की यथार्थ उपयोगिता है अर्थात् वेद, वेदान्त आदि के सेवन का मुख्य फल ब्रह्मज्ञान है।

महा मंगल रूप भगवद्गीता आदि पाँचों गीताओं का यथार्थ भाव संक्षेपपूर्वक दूसरे भाग में खुलासा लिखा है, अर्थात् सिद्धान्त काल में ही रखनी उचित जान जहाँ-जहाँ उन पाँचों गीताओंकी आवश्यकता है वहाँ ही रक्खी हैं वह प्रसंग द्वारा जान पड़ेगी।

लेखक का अभिवादन

॥ दोहा ॥

अवगुण खानी अल्प गति, विद्या पौरुष हीन। गुरु ईशकी कृपा से, अपूर्व संग्रह कीन॥
शास्त्र वेद वेदान्त के, उत्तम श्रेणी जोइ। बहु मन्थन का सार यह, करी संहिता सोइ॥
अति अथाह वेदान्त रस, मुझे नहीं कुछ ज्ञान। भूल होइ शब्दार्थ में, क्षमा करें विद्वान्॥
यद्यपि टीका पद्य सब, अर्थ मूल अनुसार। टूटे फूटे वर्ण यह, सार्थक करें उदार॥
भेंट संत समाज की ईश समर्पित लेख। रत्नाकर सिद्धान्त गत, तत्त्वज्ञान सब देख॥

मनवाणी का अविषय, अति सूक्ष्म (निर्गुण) ब्रह्म को साधारण मनुष्य नहीं जान सकते, वेदान्त के यथार्थ तत्व को जानने वाले विद्वान् अधिकारियों को संकेतों (युक्तियों) द्वारा निराकार ब्रह्म को लखा देते हैं, निर्गुण ब्रह्म को शास्त्र रीति से वर्णन करके ग्रन्थकर्त्ता अपनी प्रार्थना करता है।

गीतक छंद

अज अखण्ड अविनाशी सब विधि अजर पूरण कर्त्तारम्।
अनादि आनन्द अद्वै व्यापक शान्त नित्य नहिं पारम्॥
निर्विकल्प स्वामी जगदीश्वर अचिन्त्य निर्विकारम्।
अधिष्टान आनन्द भेद बिन, निर्गुण शुद्ध आकारम्॥
विश्वपति अवाच्य अलक्ष्य, कर्त्ता धरता आधारम्।
निराकार वपू निरञ्जन बोध स्वरूप निराधारम्॥
धारणा मनन निज आत्म कर लहि मुमुक्षु तत सारम्।
टेर नित ब्रह्मानन्द की अधिकारी के हित कारम्॥

तथा—परमात्मा देव और सर्वज्ञों को कोटिशः मैं धन्यवाद देता हूँ, कि जिनकी विशेष अनुग्रह से अज्ञान रूप अन्धकार के दूर करने को वेद वेदांत का सिद्धान्त रूप सूर्य प्रकाशित हो रहा है। परन्तु शिष्य व गुरु दोनों योग्य हों तो शीघ्र ब्रह्म मिल जाय अर्थात् आज्ञाकारी (गुरु के भक्त) व शान्त हृदय वाले उत्तम शिष्य को जब वेद, वेदान्त का ज्ञाता निष्काम सद्गुरु मिले तभी कल्याण हो सकता है।

जो अधिकारी इस ज्ञान का आश्रय लेता है वह संसार बन्धनों से अवश्य मुक्त होता है। परन्तु जो-जो मनुष्य सप्रेम इसका अभ्यास नहीं करते उनके सांसारिक दुःख व संशय दूर नहीं हो सकते। अतः श्रेय चाहने वाले मुमुक्षुओं को उचित है कि वेद, वेदान्त आदि सम्पूर्ण शास्त्रों में से संग्रह किये हुये उत्तम सिद्धान्तों संयुक्त इस पुस्तक का नित्य अभ्यास करते हुये कैवल्य मुक्ति को प्राप्त हों।

विज्ञापन ।

(१) बहुत मनुष्य ब्रह्मज्ञान में अरुचि करके इससे दूर रहते हैं, महान् शोक है। यदि ब्रह्मज्ञान सर्वोत्तम न होता तब श्री रामजी क्यों सुनते ? और श्रीकृष्णचन्द्र गीता में विशेषतया क्यों कहते ?

(२) सर्व वेदों के अन्त (निचोड़) को वेदान्त कहते हैं। बल्कि वेद शब्द का अर्थ भी ज्ञान ही है। जब ज्ञान ठीक नहीं तो वेदों की भी निन्दा होती है, वेदों में ज्ञान काण्ड बहुत आदरणीय है।

(३) किसी को अज्ञानी कहें तो बैर बँध जाता है। और ज्ञानी कहने पर मनुष्य प्रसन्न होता है। ऐसे प्रियतम ज्ञान की निन्दा करना और उस से वञ्चित रहना अभाग्यता है।

(४) ब्रह्मज्ञान का फल संसार के सर्व दुःखों की निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति है, इसको कौन नहीं चाहता, इन दोनों अर्थों के लिये सर्व लोग नित्य उपाय किया करते रहते है।

(५) श्रीकृष्ण जी ने गीता में अपने श्रेष्ठ भक्त चार माने हैं उन में ज्ञानी प्रियतम साक्षात् आत्म (स्वरूप) वर्णन किया है वर्तमान के भक्तों को नहीं लिखा है।

(६) वेद व गीता आदि शास्त्रों में सन्यासियों व ब्राह्मणों का ब्रह्मज्ञान ही मुख्य धर्म लिखा है। अपने धर्म की निन्दा व त्याग करने से बुरी गति प्राप्त होती है।

(७) वेदों की व्याख्या में लिखा है कि ब्रह्मज्ञान का थोड़ा विचार भी सम्पूर्ण यज्ञों, तीर्थों व तपों और मुख्य-मुख्य देवताओं के पूजन का फल देता है। अर्थात् ज्ञानी सर्वथा पूज्य हैं।

(८) बहुत कहते हैं कि गृहस्थों को ब्रह्म ज्ञान नहीं हो सकता, यह कथन ठीक नहीं, किन्तु योग वाशिष्ठ में ब्राह्मण राजा बल्कि असुर आदि अनंत ज्ञानी वर्णन किये हैं।

(९) स्वर्ण को स्वर्ण व मिट्टी को मिट्टी जानना ठीक है, तैसे ही चैतन्य परमात्मा एक सत्य, और सर्व पसारा मिथ्या (झूठा) है, यही अद्वैत ब्रह्मज्ञान कहलाता है।

ब्रह्मचर्य

प्रश्न—अधिकारियों के मुख्य कर्त्तव्य (सर्वोत्तम साधन) कौन है।

उत्तर—ब्रह्मचर्य्य सब सिद्धियों का श्रेष्ठ साधन है और अहिंसा भी अधिकारियों का मुख्य कर्त्तव्य है तथा सादा आहार और व्यवहार करते हुये संतोष को धारण करना चाहिये। सरलता तथा मर्यादा सहित सत्य का बर्ताव करना। इन चारों साधनों का मुख्य कर्तव्य अधिकारियों के लिये उपनिषदों में स्पष्ट लिखा है।*

भाव यह है कि ब्रह्मचर्य्य आदि चारों साधनों को धारण करके मुमुक्षु कल्याण को प्राप्त हो सकता है अतः दुःख रूप संसार से ब्रह्मचर्य आदि की सहायता से अपनी रक्षा करनी चाहिये।

मनुष्य देह चौरासी लाख योनियों में सर्वोत्तम है क्योंकि इसमें बुद्धि का पूर्ण विकास होता है। यदि ऐसी मानवी बुद्धि को पाकर भी जो मनुष्य अपना उद्धार नहीं करता उससे अधिक मूर्ख और कौन हो सकता है। बिना विद्या के आत्मोद्धार नहीं हो सकता। ब्रह्मचर्य का ठीक रूप से पालन करके ही विद्या प्राप्त हो सकती है अन्यथा नहीं। इस कारण प्रत्येक मनुष्य का धर्म है कि वह शान्ति के हेतु और अक्षय सुख की प्राप्ति के लिये तथा मानवी जीवन को सफल बनाने के उद्देश्य से संसार में शीघ्र ब्रह्मचर्य्य का, सत् असत् का विवेक कराने वाली विद्या की प्राप्ति के लिए पूर्ण उद्योग करे।

माता, पिता का कर्त्तव्य है कि वह अपनी सन्तान को योग्य शिक्षा देवें क्योंकि भविष्य में उन्नति का भार उन्हीं बच्चों पर है प्रत्येक स्थान में कन्या पाठशालायें होनी आवश्यक हैं। जिनमें उनको धार्मिक एवं गृहस्थ सम्बन्धी योग व उचित शिक्षा प्राप्त हो सके।

---

* ब्रह्मचर्य्यमहिंसा चः

आजकल लड़कियों को उचित विद्या न पढ़ने के कारण लड़ाई, झगड़ों से घर अशान्ति के केन्द्र बने रहते हैं। और यहाँ तक कि वे दुर्बुद्धि के कारण भ्रम में आकर अपने अमूल्य सतीत्व रत्न से हाथ धो बैठती हैं जिसका प्रभाव उनकी सन्तान पर भी पड़कर उनका जीवन निष्फल हो जाता है। छोटी-छोटी उम्र के बच्चे पाँच वर्ष की आयु तक घर के दूषित वायुमंडल में रहकर गाली आदि अनेक अवगुणों में लिप्त हो जाते हैं जिनको मरण पर्य्यन्त त्यागना कठिन ही नहीं किन्तु असम्भव हो जाता है। यदि उनको शिशु अवस्था में योग्य शिक्षा मिले तो वे अभिमन्यु व मंदालसा की भाँति अद्भुत चमत्कार दिखला सकते हैं परन्तु शोक है कि अबलाओं की शिक्षा का कोई उचित प्रबन्ध नहीं किया जाता जिसके कारण स्त्री जाति व समस्त देश की दशा प्रतिदिन शोचनीय होती जा रही है।*

अनेकों भाई तथा बहिनों से जब कहा जाता है कि आप अपनी लड़कियों को शिक्षा क्यों नहीं दिलातीं तो उत्तर मिलता है कि "आज कल की शिक्षा प्रणाली का ढंग उचित नहीं है वह बिगड़ जाती हैं। भोजन बनाने से घृणा करती हैं, भोग विलास अधिक प्रिय लगता है, और नाटक सिनेमा आदि से ही उनका मनोरंजन होता है" तात्पर्य यह है कि जीवन वाह्य बन जाता है। परन्तु पढ़ी-लिखी अनेक बहिनें योग्य भी हैं जिससे महिला समाज व संसार का बड़ा हित भी हो रहा है परन्तु उनके योग्य होने का कारण यह है कि उनके माता, पिता तथा पति उचित धर्म की ओर पूर्ण रुचि रखते हैं वर्त्तमान की पुस्तक से ऐसी किसी प्रकार की शिक्षा नहीं मिलती जिससे वे योग्य गृहणी बन सकें इसी कारण विद्वान् भाई, बहिनों से प्रार्थना है कि वे ऐसी पुस्तकें बनाकर शिक्षा विभाग से पास करावें जिनसे स्त्री जाति को अपने चरित्र (बर्ताव) में, गृहकार्यों में तथा योग्य सन्तान उत्पन्न करने में सहायता मिल सके।

स्कूलों में भी बच्चों को लगभग एक दो घंटे धार्मिक शिक्षा अवश्य मिलनी उचित है। क्योंकि उस समय बच्चों की बुद्धि कोमल होती है उनको जैसा बनाना चाहो वैसे ही बन जावेंगे परन्तु बड़ी अवस्था में उन

---

*दुखं जन्म जरा सुखं०

पर शिक्षा का प्रभाव कम और देरी से पड़ता है। जिस प्रकार गीली लकड़ी को मोड़कर चाहे गोलाकार बनालो चाहे त्रिकोण परन्तु सूख जाने पर नहीं मुड़ सकती। ठीक ऐसी ही दशा छोटे बच्चों की होती है। वह पाँच वर्ष की आयु तक माता के समीप रह कर जितना सीख सकते हैं और जितनी योग्यता गुरु द्वारा अठारह वर्ष की आयु तक प्राप्त कर सकते हैं उतनी पूर्ण आयु में प्राप्त करना कठिन ही नहीं किन्तु बहुत सी दशाओं में असम्भव सा हो जाता है। इस कारण माता और गुरु दोनों ही योग्य होने चाहिए।

प्रश्न—ब्रह्मचर्य पालन न करने से क्या-क्या हानियाँ होती हैं।

उत्तर—आजकल प्रमेह, स्वप्नदोष, नपुंसकता, तपेदिक, जीर्ण-ज्वर आदि रोग वीर्य रक्षा का उचित रूप से पालन न होने के कारण ही उत्पन्न होते हैं यदि अपनी संतान को बलवान, बुद्धिमान तथा योग्य बनाना चाहते हो तो अभी से ब्रह्मचर्य पालन करने की शिक्षा देनी उचित है। जो स्वयं जिस कार्य को करता है उसी का प्रभाव दूसरों पर पड़ता है और यदि स्वयं तो करने में असमर्थ हो तो वह दूसरों को कराने के लिये कदाचित् प्रवृत्ति नहीं करा सकता। इस कारण पहिले स्वयं आदर्श बनो तब कहीं सन्तान को योग्य बनाने में सफलता प्राप्त कर सकोगे।

ब्रह्मचर्य व्रत का पालन ठीक-ठीक रूप से उसी समय हो सकता है जब कि आहार की ओर अधिक ध्यान दिया जावेगा*। आहार अल्प और सादा होगा तो वीर्य की रक्षा में सफलता मिलना कठिन न होगा। सादा आहार के कहने का तात्पर्य उस आहार से है जो शीघ्र पच जावे और मन को विक्षिप्त न करे। क्यों कि जैसा आहार किया जायगा वैसा ही मन बनेगा। यदि पुष्ट आहार करोगे तो मन भी दुष्ट होगा जिसके कारण ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना असाध्य हो जायगा। केवल सन्तान उत्पत्ति के लिये उचित काल में अपनी स्त्री से संग करना पाप नहीं है किन्तु इंद्रियों के वशीभूत होकर अति व्यभिचारी होना पाप ही नहीं किन्तु स्वास्थ्य के लिये भी बहुत हानिकारक है।

---

*आहार शुद्धौ सत्व शुद्धिः

स्त्री जाति को पतिव्रत धर्म पर आरूढ़ रहने को अधिक दबाव डाला जाता है परन्तु यह नहीं विचारा जाता कि वे कहाँ तक अपने धर्म को निभा सकती हैं जब कि पुरुष एक पत्नीव्रत पर दृढ़ नहीं है। यदि पुरुष मर्यादा में रहें तो स्त्रियाँ स्वयं पतिव्रता बनी बनाई हैं।

यदि जीवन सुखमय बनाने की इच्छा है तो ब्रह्मचर्य का पूर्ण रूप से पालन करना अति आवश्यक है। किसी ने सत्य कहा है कि—

एकहि साधे सब सधें, सब साधे सब जाय।
जो तू सींचे मूल को, फूले फले अघाय॥

अर्थात् एक ब्रह्मचर्य्य का पालन करने मात्र से ही सब अन्य साधन अपने आप ही पूर्ण हो जाते हैं। यदि ब्रह्मचर्य्य के बिना और साधनों की इच्छा की जाय तो कोई भी साधन सफल नहीं हो सकेगा। जिस प्रकार वृक्ष की जड़ को सींचे जाने से वह भली प्रकार फूलता फलता है उसी प्रकार जीवन रूप वृक्ष की ब्रह्मचर्य्य रूप जड़ को सींचा जावेगा तो यह जीवन भी तेजस्वी एवं सुखमय हो जायगा। अतः ब्रह्मचर्य्य ही सर्वोत्तम साधन है।

प्रश्न—ब्रह्मचर्य्य का ऐसा क्या प्रभाव है?

उत्तर—ब्रह्मचर्य्य के ही प्रताप से महाभारत के समय बुड्ढे भीष्म पितामह ने श्रीकृष्ण, गाण्डीवधारी अर्जुन, महापराक्रमी भीमसेन जैसे अद्वितीय नवयुवक योद्धाओं के दाँत खट्टे कर दिये थे और यदि वे शर-शय्या पर स्वयं न सोते तो निस्सन्देह पांडवों का नाश और कौरवों की विजय का डंका बजा होता। उसी पूर्ण ब्रह्मचारी भीष्म जी ने सहस्रों तीक्ष्ण बाणों की सेज पर बिना किसी कष्ट के पुष्पशय्या की भाँति लेटे हुये ज्ञान आदि का उपदेश किया परन्तु शोक है कि उन्हीं की संतान होते हुए भी यदि आज हमारे शरीर में एक छोटा सा काँटा लग जाता है तो आर्तनाद से घर गूँजा करता है। कारण यह है कि वीर्यनाश के द्वारा हम इतने निर्बल हो गये हैं कि थोड़ा सा भी कष्ट सहन नहीं कर सकते।

सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो हमारी परतन्त्रता का कारण हमारी वीर्यहीनता ही है। जो वीर्यवान है वीर वही स्वतन्त्र है। शुक्रधारी ही शूर वीर हो सकता है। वीर्यवान पुरुष के ही विचार श्रेष्ठ होते हैं। शरीर का बंधन बंधन नहीं है वास्तविक मन का बंधन ही बंधन है अतएव मन में भय, अशान्ति, उद्वेग और विषाद को रंचक मात्र भी स्थान न दो। भगवान् की दया तथा आत्मिक शक्ति को संचय कर सदा शान्त, निर्भय और प्रसन्न रहते हुए इस असार संसार के जन्म मरण रूपी महाकष्टों से छुटकारा पाने की इच्छा हो तो इसी काल में पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य्य के पालन में कटिबद्ध हो जाओ।

ॐ गुरु परमात्मने नमः

अपूर्व

सिद्धान्त रत्नाकर

मंगल–वेद मंत्र

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्यपूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥१॥
ॐ सहनाववतु सहनौभुनक्तु सहवीर्यं करवावहै । तेजस्विनावधीतमस्तुमाविद्विषावहै
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥२॥ ॐ नमो ब्रह्मादिभ्यो ब्रह्मविद्या सम्प्रदाय कर्तृभ्यो
वंश ऋषिभ्यो महद्भयो नमः गुरुभ्यः ॥३॥

भावार्थ दोहा

पूर्ण ब्रह्म सर्वत्र यह, जगत ब्रह्मसे होइ । स्वीकृत पूर्ण ब्रह्म जब ब्रह्मपूर्ण सब जोइ॥१॥
रक्षा पालन शिष्य गुरु, वृद्ध आज यह तीन। हो अध्यय नहि तेजसी द्वेष नहीं कववीन
संप्रदाय वेदांत ओज, नमो सभी ऋषिराय । अवयव बिन प्रज्ञान घन ब्रह्मात्म मैं पाय ॥

विवरण (टीका)

प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप जगत में चैतन्य ही पूर्ण हो रहा है । उस सत्य स्वरूप पूर्ण ब्रह्म से स्वप्न सृष्टि के समान सर्व जगत प्रगट होता है । संसार के बाध (मिथ्या) निश्चय द्वारा जो केवल पूर्णत्व (व्यापक ब्रह्म) को ही अनुभव किया जावे तब सत्य पद पूर्ण ब्रह्म शेष रहता है ।१।

गुरु शिष्य हम दोनों की आसुरी सम्पदा से रक्षा हो करके दैवी सम्पत्ति का पालन हो और हमारा हृदय आत्मबल कर पूर्ण एवं (इसी प्रकार) हमारा अध्ययन प्रभावशाली होवे और गुरु, शिष्य हम दोनों में द्वेषभाव कदाचित न हो । हे देव ! अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत रूप तीनों तापों का अभाव होकर हम सरीखे मनुष्यों को परमानन्द रूप शान्ति की प्राप्ति हो ।२।

निर्मल विधाता व वेदान्त सम्प्रदाय के कर्त्ता महादेव और ऋषि, मुनि सर्व एवं विशुद्ध ज्ञानप्रद सद्गुरु देव इत्यादि पूज्यों के प्रति नम्रता सहित मैं नमस्कार करता हूँ, जिनकी कृपादृष्टि से निरवयव एक रस बोधस्वरूप ब्रह्मात्म को निश्चय किया है और विशाल मूर्ति नारायण देव जगत् स्रष्टा पितामह श्री वसिष्ठ मुनि, शक्ति, पाराशर, श्रीवेदव्यास, शुक्रजी गौड़ पादाचार्य और योगीश्वर गोविन्द, पूर्व कहे इन सुत व शिष्य सम्प्रदाय सहित विद्वानों को मैं अनेकशः नमस्कार करता हूँ । ३ ।

श्रुति स्मृति पुराणानामालयं गुरुणालयम्। नमामि भगवत्पादं शंकर लोक शंकरम्।४।
सृष्टि स्थित्य कर्त्तारो ब्रह्माद्या यदनुग्रहात। तं नमः सर्वगं नित्यं सच्चिदानंद विग्रहम्।५।
सर्व वेदान्त सिद्धान्त गोचरं तमगोचरम्। गोविंदं परमानन्दं सद्गुरुं प्रणतोस्म्यहम्।६।
गणेशं विघ्न हर्तारं जगदम्बा प्रणम्यच। जनानाँ स्वात्म बोधाय यत्नमेतं समारभे।७।

दोहों में अर्थ।

स्मृतिरु वेद पुराण सब, नमो कृपाके धाम। चरण कमल युग शंभुके मुक्ति करें अभिराम
जिनी दया से देव त्रय, सर्ग प्रलय करथित्त। पूर्ण सच्चिदानन्द को, नमो करूँ मैं नित्य
विषय वेद वेदान्त लख, पुनि निर्विषय कहाय। परमानन्द स्वरूप जिस बंदो गुरु सुभाय
विघ्न विनाशक पूज्य जग, सरस्वती जगदम्ब। जीवों के सुख बोधहित, करूँ ग्रंथ आरम्भ

टीका—विशालरूप वेद भगवान, पूर्व मीमांसा, पुराण, इतिहास सर्व मोक्ष शास्त्र और नारायण देव के चरण कमल एवं कल्याणप्रद महादेवजी के प्रति दोऊ कर जोड़ दण्डवत स्वीकृत हो। शंकर स्वरूप भाष्यकार (श्रीमद्शंकराचार्य) को और ब्रह्मसूत्रों के निर्माता विष्णुरूप, श्रीवेदव्यास इनको बारम्बार बंदना करता हूँ।४।

सर्व के अधिष्ठाता परमेश्वर कि जिनकी अनुग्रह से अज, हरि, हर सर्वज्ञ जगत् की उत्पत्ति, स्थिति प्रलय करते हैं उस सर्वज्ञ व्यापक सत्य चैतन्य आनन्द स्वरूप माया उपाधि वाले ईश्वर को विनीत भाव संयुक्त प्रणाम करता हूँ।५।

सम्पूर्ण वेद वेदान्त कर जानने योग्य और वास्तव दृष्टि से इन सब से परे (अतीत) केवल परमानन्द स्वरूप सद्गुरु देव को कोटिशः निरंतर मैं बन्दना करता हूँ, कि जिनकी परमदयालुता करके अधिकारी सांसारिक सर्व दुखों से मुक्ति पाकर शीघ्र परम पद को प्राप्त होता है। ६।

सर्व विघ्नों को दूर करने वाले महामान्यवर श्रीगणेशजी को और गिराधीश सरस्वती भगवती को अधिकारियों के सुख (सुगम) ब्रह्मज्ञान प्राप्ति के लिये प्रेम सहित बारम्बार प्रणाम करता हूँ।७। इति मंगल॥

साधन सम्पद प्रथम रत्न

भवदोष दृष्टि विभास (१)

प्रश्नोत्तर क्रम

कथं ज्ञानमवाप्नोति कथं मुक्तिर्भविष्यति। वैराग्यं च कथं प्राप्तमेतद्ब्रूहिममप्रभो।१।
मुक्तिमिच्छसि चेत्तात विषयान्विषवत्त्यज। क्षमार्जव दया तोष सत्यं पीयूष वद्भज।२।
दुःखंजन्मजरादुःखंदुःखं मृत्युःपुनःपुनः। संसार मण्डलं दुःखं पच्यन्ते यत्र जन्तवः।३।
आपात रमणीयेषु भोगेष्वेवंविचारवान्। नानुरज्यति किंत्वेतान्दोषदृष्ट्या जिहासति।४

किस कारण वैराग्य दृढ़, ज्ञान होइ किस भाँति। पावोंमुक्तिकवनविधि, होमेरेउरशांति
चहे मुक्ति जोतात अब, विषय हलाहल त्याग। सम्पद दैवीअभीसमधारो सहअनुराग
जन्ममृत्युभयजरायुत, जगअनेकदुखराश। विश्व सभी है कष्टमय, अज्ञउसीकीआश
दृष्ट नष्ट जग भोग में, सुजन करें नहिं राग। दोष दृष्टि से तजें सब, उसकरहो वैराग

प्रश्न—मेरे हृदय में वैराग्य किस उपाय से व ब्रह्मज्ञान किन साधनों से हो और श्रेष्ठ मुक्ति के लिये क्या-क्या कर्त्तव्य करने उचित हैं।१।

उत्तर—पहले जन्म के शुभ संस्कारों अथवा इस जन्म में निष्काम कर्म और यथार्थ भक्ति होने पर, शुद्ध हुये हृदय में, संसार के सर्व भोग पदार्थों में राग छूटकर धीरे-धीरे वैराग्य दृढ़ होता है।

हे तात्! यदि मुक्ति पाने की तेरी तीव्र इच्छा है तो शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन सर्व विषयों को विष के समान दुःखदाई जानकर त्याग और क्षमा, सरलता, संतोष, सत्य इत्यादि शुद्ध भावों को अमृत की नाईं अपने मन में धारण कर।२।

प्रश्न—संसार के सर्व पदार्थों में ग्लानि हो उसके लिये और उपाय कहिये कि जिस कर मेरे को शीघ्र वैराग्य प्राप्त हो जाय।

उत्तर—अनेक दुःख जन्म पाने में व महान् कष्ट मरने पर और बाल्य, युवा, बुड्ढेपन में संसारी जीव बहुत दुःखों कर नित्य पीड़ित होते हैं तब भी उन पदार्थों में अज्ञानी जीव आसक्त रहते हैं, यह महान् शोक है।३।

प्रिय पदार्थों के नाश हो जाने पर अज्ञानी मनुष्यों को चिंता, शोक व मोह आदि अनेक आपत्तियाँ घेरे रहती हैं, सुजन ऐसा निश्चय करके दुःख रूप पदार्थों में आसक्ति कभी नहीं करते किंतु इनमें अनेक दोष जान कर त्याग देते हैं।

य एषु मूढा विषयेषु बद्धा रागेण पाशेन सुदुर्मदेन। आयान्ति निर्यान्त्यध ऊर्ध्व-मुच्चैःस्वकर्म दूतेन जवेन नीताः ।५। शब्दादिभि पंचभिरेव पंच पंचत्वमापुः स्वगुणेन बद्धाः। कुरङ्ग मातङ्ग पतङ्ग मीन भृङ्गा। नराः पँचभि रञ्चितः किम् ॥६॥ प्रश्नोत्तरी-पशोः पशुः को न करोति धर्मम्। प्राधीत शास्त्रोऽपि न चात्म बोधः ॥७॥

मूढ़ विषयों में प्रीति अति, बन्धन शोक महान्। कर्मों कर जन्में मरें, योनि नीच उच पान
मृग पतंग गज मीन अलि, एक एक कर नाश। पाँच विषय रति पुरुष जो, कहु नी पुनि क्या तास
पशुओं से भी नीच नर, करे धर्म पथ त्याग। वेद शास्त्र अध्ययन कर, नहीं ज्ञान हत भाग

प्रश्न—जो मनुष्य विषयों में बहुत प्रीति करते हैं उनकी दशा क्या होती है ?

उत्तर—विषयों में दृढ़ आसक्ति करने वाले जीव मोह रूप फाँसी कर बंधे हुए स्वर्ग व नरक और चौरासी लाख योनियों में अपने किये कर्तव्यों का फल भोगने के लिये इस लोक व परलोक में भ्रमते-भ्रमते महान् कष्टों कर विशेष पीड़ित होते हैं उनकी दुर्गति कहाँ तक कही जाय ।५।

देखिये एक-एक विषय में प्रीति करके बँधे हुए मृग, हस्ती, पतंग, मछली और भँवरा नाश होते हैं। जिस मनुष्य की प्रीति पाँचों विषयों में होती है उसके नष्ट-भ्रष्ट होने में आश्चर्य ही क्या ? निस्सन्देह रागी मनुष्य जन्म, मृत्युरूप चक्र में पड़े हुये अपार दुःखों को नित्य सहते हैं ।६।

विचार से देखा जाय तो मनुष्य जन्म की सफलता केवल परोपकार व परमार्थ के साधने से हो सकती है वरन् पशुओं से मनुष्य और गिरा हुआ है, अर्थात् जो मनुष्य अपना धर्म नहीं करता और शास्त्रों को पढ़ता, विचार करता हुआ भी ब्रह्मज्ञान को नहीं पाता उसको पशुओं का पशु (महानीच) शास्त्र में वर्णन किया है, यानी सोना, खाना, भोग्य भोगना और भय करना यह बातें पशुओं व पक्षियों और मनुष्यों में समान हैं परन्तु ब्रह्मज्ञान को पाना पुरुषों में अधिकता है जो यह नहीं तो मनुष्य केवल दुर्वासना व बास आदि संयुक्त हुआ निन्दित गिना जाता है।

इसलिये सज्जनों को चाहिये कि विषय भोगों में अधिक राग को त्याग करके साधनों द्वारा ज्ञान को प्राप्त होकर मनुष्य जन्मकी सफलता करें ।७।

त्वङ्मांस रुधिरस्नायु मेदोमज्जा स्थिसंकुलम्। पूर्णं मूत्र पुरीषाभ्यांस्थूलं निद्यमिदंवपुः॥८॥
देह दोषांश्चित्त दोषान् भोग्य दोषाननेकशः। शुना वांते पायसे नो कामस्तद्वद्विवेकिनः॥९॥
विषयाशामहापाशाद्योविमुक्तःसुदस्त्यजात्। सएवकल्पतेमुक्त्यैनान्यःषटशास्त्रवेद्यपि॥१०

नाड़ी, चर्बी, मांस, त्वक, रक्त स्थि युतमेद। पूर्णदेहमलमूतसे, निंद्यरूपअतिखेद॥८।
दोषदेहअरुचित्तके, भोगहिं कष्ट अनेक। लख कूकर के वमन सम, चहेंश्रेष्ठनहिंएक॥९
महापाशआशाविषय, कठिनतजेनरजोइ। पावे सोईमुक्तिजन, पढ़आगमनहिंकोई॥१०

प्रश्न—मनुष्य देह में बास आदि की अधिकता कैसे है यह स्पष्ट कहिये?

उत्तर—तुमने वैराग्य प्राप्ति का उपाय पूछा इसलिये कहना पड़ा यदि मनुष्य देह में बास विशेष न होती तो अमीरों व पाक साफ रहने वालों को फूलों व अतर आदि सुगंध की जरूरत क्यों रहती? धोवती व उत्तम २ पदार्थ देह व जिह्वा के संग से ग्लानि सहित क्यों होते हैं? पशु, पक्षी कई दिन तक न नहायें तो भी ठीक रहते हैं परन्तु मनुष्य थोड़े दिन स्नान किये बिना बासयुक्त क्यों होता है? अति मलिन व दुर्गन्धित रज, वीर्य से देह बनती है, यदि ऊपर त्वचा (चाम) न लिपटी होवे तो जो २ दुर्दशा होनी संभव हैं उन सबको सज्जन समझ सकते हैं। अधिक क्या कहूँ।

मोक्ष शास्त्रों में जिसको स्पष्ट लिखते हैं वह छिप कैसे सकती है जैसे त्वचा, हड्डी, मांस, रुधिर, आँतें, मज्जा, चर्बी, रोम और मल, मूत्र आदि अनेक दुर्गन्धित वस्तुओं से यह शरीर भरा है ऐसा अपवित्र व निन्दित (दुर्गन्धमय) देह पंजर को आत्मा जानकर इसमें आसक्ति व अत्याचार करना क्या बुद्धिमानता है? ॥८॥

मन, चित्त, यह शरीर से भी बुरे हैं जो भोगों की इच्छा कराते हुए अत्याचारों द्वारा मनुष्यों को पापात्मा बनाते हैं उसका फल जीव बहुत समय तक भोगा करता है। जो विचारवान् मनुष्य हैं वह सर्व कार्यों व पदार्थों का आदि, अन्त परिणाम (फल) समझकर अपने हितका वर्ताव करते हैं। अर्थात् कूकर के वमन (उलटी) की नांई निन्दित जान करके किसी भी भोग्य पदार्थ की विचारवान् इच्छा नहीं करता ॥९॥

विषयों की तृष्णा ही दृढ़ बन्धन है जो इससे छूटा है वह मुक्त है। बिना वैराग्य, अभ्यास शास्त्रों के पढ़ने मात्र से कल्याण नहीं होता किन्तु ब्रह्मज्ञान द्वारा मुक्ति होती है ॥१०॥

भीषयत्यपि धीरंमामन्धयत्यपि सेक्षणम्। खेदयत्यपिसाऽऽनन्दंतृष्णाकृष्णेवशर्वरी॥११
वह्नेरुष्णतरः शैलादपिकष्टतरक्रमः। वज्रादपि दृढो ब्रह्मन् दुर्निग्रहंमनोग्रहः ॥१२॥
अहंकार वशीदापदहंकाराद्दुराधयः। अहंकारवशादीहात्वहंकारो ममामयः ॥१३॥

घोर अन्धतमलोभयह, धीर पुरुषभयदेत। अन्धविवेकीकोकरे, आनन्दहि दुखदेत॥
उष्णअग्निसे भूतमन, वज्र समान कठोर। मेरू लंघनसे कठिन, चंचल है अतिजोर॥
गर्वमूलआपत्तिसब, मनमें दुःखअनेक। अहंकर्म बहुरागअति, सुख इसमें नहिंएक॥

प्रश्न—मनुष्य देह में सुख भी तो माने जाते हैं, क्या सब लोग बेसमझ हैं ?

उत्तर—जब कुँए में ही भांग पड़ जाय तो सबके भूलने में कसर नहीं रहती। देखिये! बाल्य, युवा, बुढ़ापे में क्रोध, तृष्णा आदि जीवों को महान् कष्टों से व्याकुल करते हैं अर्थात् एक तृष्णा रूप व्याधि धीरवानों को अन्धा और आनन्द स्वरूप जीवात्मा को दुःखी, दीन करती है। तीनों लोकों का राजा जब लोभ आदि के वश होता है तब वह भी अनेक चिंता, शोक आदि से दुःखी रहता है। यानी जिसके हृदय रूप गुफा में तृष्णा रूपपिशाचनी प्रवेश करती है उसको मृतक समान बना देती है। शान्ति व विचार आदि गुण दूर भाग जाते हैं, बल्कि अनेक कष्टों कर लोभी जीव सदा दुखित रहता है ॥११॥

संसारी मनुष्य का मन बहुत चंचल (विकारवान) है उसका जीतना कठिन है। अज्ञानियों का मन अग्नि से अति उष्ण व पर्वत से कड़ा और बज्र से कठोर है उसका वश करना अत्यन्त कठिन है, यह मन देव, असुर मनुष्य और चौरासी लाख जीवों को सदा भ्रमाता हुआ कभी स्थिर होने नहीं देता ॥१२॥

इस मन का मूल दुरात्मा रूप अहंकार सम्पूर्ण आपत्तियों का कारण है और महान् २ अनर्थों की खानि है। इस गर्व के होते हुए शुभ गुण भी पापमय होते हैं अर्थात् सुकृत दूर होकर विकार प्रवेश करते हैं और गर्व (अहंकार) के होने पर भक्ति व ज्ञान निरर्थक होते हैं। अतः गर्व के नाश के लिये वैराग्य व अभ्यास का आश्रय लेकर मनुष्य सुख, शान्ति को प्राप्त हो सकता है ॥१३॥

अहंकारःकलकायबुद्धयःपरिपेलवाः। क्रिया दुष्फल दायिन्यो लीलाः स्त्री निष्टतांगतः।१४
केशकज्जल धारिण्यो दुःस्पर्शालोचनप्रियाः।दुष्कृतऽग्निऽशिखानार्योदहन्तितृण वन्नरम्१५
अग्निकुण्ड समा नारी घृत कुम्भ समोनरः। संसर्गेण विलीयेत तस्मातां परि वर्जयेत्। १६

गर्ववृति अज्ञानयुत, सब कलंक की रास। कर्त्तवकर दुखदायनी, उर में नारि निवास ॥
काजल केश स्पर्शनी, घनेदेत संताप। अघपावक प्रिय दृष्टि तिस, जरे, पुरुष त्रयताप ॥
नारी पावक कुण्ड सम, पुरुष पिण्ड घृत जान। होवे संग विलीनझट, त्यागें दूर सुजान॥

प्रश्न—अहंकार जब बहुत दुःखदाई है तब जीव इसमें क्यों फँसता है ?

उत्तर—बिना विचारे हुये जीव मिट्टी के पिण्ड में वृथा अहंकार मान करके भ्रमता हुआ सदा कष्ट पाता है। अहंकार के होने पर जीव अपने असली स्वरूप को भूलकर विकारी देह में अनहुआ आप मानकर भोगों की ओर झुकता है। देह अभिमानी मनुष्य नाना भोगों की इच्छा से स्त्रियों के आधीन रहता है, स्त्रियाँ मूर्ख मनुष्यों को सूखे तृण के समान भ्रमाती हुई अन्त में नरक का कारण होती हैं ॥१४॥

अपने शृंगारों व हाव भाव से कामी नरों को वह स्त्रियाँ तत्काल मोह लेती हैं और मूर्ख मनुष्य काम अग्नि कर सदा जलता है, कभी शान्ति नहीं पाता।

अहंकार आदि दुर्वासना से पर स्त्री को जो भोगना चाहता है वह पुरुष अवश्य नष्ट होता है, जैसे कीचक और रावण महान् बलवान और वैभव वाले भी पर स्त्री में प्रीति करके सर्वस्व समेत नष्ट भ्रष्ट हो गये।१५।

स्त्री मानो अग्नि ज्वाला का तप्त कुण्ड है और पुरुष घृत के लोंदे के समान है। उसकी समीपता (संग) करने पर कामातुर हुआ पुरुष नीच दशा को पाता है। जिसको कल्याण की इच्छा हो वह स्त्रियों के संग से सदा बचता रहे। इसी प्रकार श्रेष्ठ स्त्रियों को पर पुरुषों के समीप बिना भारी प्रयोजन के कभी नहीं जाना चाहिये किंतु अत्यावश्यकता से जाकर के अपना कार्य होने पर शीघ्र घर लौट आना योग्य है, कारण यह है कि स्त्री पुरुष का एकान्त में बहुत संग होने से धर्म रखना कठिन पड़ जाता है। इसको बड़े-बड़े सर्वज्ञ लिखते हैं, निष्पक्ष सज्जन भली प्रकार जानते हैं ॥१६॥

अर्थस्य साधने सिद्धे उत्कर्षे रक्षणे व्यये। नाशोपभोग आयासस्त्रासश्चिंता भ्रमोनृणाम्। १७
स्तेयं हिंसाऽनृतं दम्भः कामः क्रोधः स्मयोमदः. भेदोवैरमविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानिच १८
मोहयन्ति मनोवृत्तिं खण्डयन्ति गुणावलिम्। दुःख जालं प्रयच्छन्ति विप्रलंभपराश्रियः।।१९

धन संचय में कई दुख, रक्षा वृद्ध विनाश। बहुत कष्ट द्रव्य खर्च में, धन अनर्थकीराशि
हिंसा चोरी झूठ छल, गर्व क्रोध भयभेद। शोकहि चिंता दीनगति, हों अनेक अति खेद
जगवैभव सब ठगे नर, मोह चित्त सब लेत। शुभगुण नाशैं मूलयुत दुःखजाल बहु देत

प्रश्न—परमार्थ में बाधा डालने वाला व सर्व अनर्थों का कारण कौन है?

उत्तर—द्रव्य आदि की जब अधिक प्राप्ति होती है तब धन के मद में आकर पुरुष विकारों और प्रवृत्ति को बहुत चाहता है। इसलिए निर्वाह मात्र धन प्राप्त होना धर्म का रक्षक होता है, अधिक वैभव पापों व अनर्थों का हेतु है। और धन सम्पत्ति के संग्रह (कमाने) में परिश्रम, चोरी, कपट, दम्भ इत्यादि अनेक उपद्रव करने पड़ते हैं द्रव्य की रक्षा (स्थिति) में कठोरता, मद, लोभ ईर्ष्या, परद्रोह आदि महान्-महान् अत्याचार किये जाते हैं और धन के नाश होने पर शोक, चिंता, मोह, दीनता भ्रांति आदि बहुत व्याधियाँ प्राप्त होती हैं, इसी प्रकार संसार के और भी सब सम्बन्धी अनेक दुःखों व दोषों को देने वाले हैं ।।१७।।

सांसारिक सर्व सुख, दुःखों का कारण व सम्पत्ति, आपत्ति भय और भोग्य सब रोग रूप हैं। शास्त्रों का यह सिद्धान्त है कि द्रव्य आदि सर्व पदार्थ परमेश्वर को भुलवा करके अन्त में अधोगति को प्राप्त करते हैं अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार यह सर्व विकार अज्ञानी धनाढ्यों में होते हैं, तब श्रेय बहुत दूर रह जाती है ।।१८।।

धन, धाम आदि सर्व वैभव मन को विकारी करके अज्ञानी धनियों को दुःखों से लिप्त करते हैं। कल्याण चाहने वाले मनुष्यों को धन आदि पदार्थों का विशेष लालच व प्रयत्न छोड़कर परमार्थ के कार्यों में प्रीति रखनी उचित है तभी मनुष्य देह व बुद्धि की सफलता है। वरन् मनुष्य में पशु और पक्षियों से कुछ विशेषता नहीं सिद्ध हो सकती। अतः सज्जन को नित्य चेत रहना उचित है ।।१९।।

सकलमध्यकलि कलतांतरं सुभग दुर्भगरूपधरंवपु प्रगटयन्सहसैवचगोप्यन् विलसतीह काल बलं नृषु ॥२०॥
अत्रैव दुर्विलासानां चूड़ामणिरिहापरः। करोत्यत्तीति लोकेस्मिन्दैव कालश्च कथ्यते॥२१॥

है अज्ञात प्रभाव जिस, प्रगट काल संसार।
उदय अस्त ब्रह्माण्ड सब, पुण्य पाप भण्डार॥२०॥
दुःख विलासी अधिक अति, सर्व प्रलय व्यवहार।
सबको देता कर्म फल, दैव काल कर्त्तार॥२१॥

प्रश्न—उन सर्व विकारों व दुःखों से मनुष्य कैसे छूट सकता है सो कहिये?

उत्तर—प्राणियों के शिर पर काल बली का नित्य पहिरा रहता है, जो मनुष्य उसको सदा याद रखता है वह सर्व पाप कर्मों से बचता हुआ शुभ गुणों को संग्रह करता है।

प्रबल काल का प्रभाव अज्ञानी जीवों की बुद्धि में नहीं आ सकता, काल बली छोटे, बड़े व उच्च, नीच सब को अचानक ग्रस लेता है। उससे बचने का और कोई उपाय नहीं किंतु उस काल कराल से बचाने वाली परमेश्वर की शरण है अर्थात् भक्ति व ज्ञान कर जीव मुक्ति पाता है॥२०॥

अज्ञानी जीवों को काल एक ग्रास के तुल्य खा जाता है अर्थात् किसी देहधारी को छोड़ता नहीं। अतः अभी चेतना कल्याण का कारण है।

सर्व जगत की उत्पत्ति व स्थिति और प्रलय करने वाला जो सर्वेश्वर है उसको महाकाल कहते हैं, उसकी नीति (आज्ञा) को कोई भी टाल नहीं सकता।

जब काल बली आता है, तो कोई सम्बन्धी उससे बचा नहीं सकता। किन्तु स्वार्थी, सगे मित्रों का झमेला झूठा है, मृत्यु समय में सम्बन्धी अपने-अपने स्वार्थ (सुख) को रोते हैं और लोक, परलोक में कालग्रसित प्राणी की कुछ सहायता नहीं कर सकते। इसलिये सर्व प्राणियों को उचित है कि मृत्यु आने से पहले अपने पारलौकिक सुख के लिये शीघ्र प्रयत्न करें।

यहां तो किसी पदार्थ बिना घुटती नहीं। जहां कोई भी सहायक नहीं वहाँ अनंत समय तक कैसे निर्वाह होगा। अतः अपने कल्याण के लिये सब को परोपकार व परमार्थ को साधना उचित है, समय बीतने पर पछताना पड़ेगा॥२१॥

कृतं न कति जन्मानि कायेन मनसा गिरा । दुःख मायासदं कर्मतद्याप्युपरम्यताम् २२
अनित्यं सर्वमेवेदं तापत्रितय दूषितम् । असारंनिन्दितं हेयमिति निश्चित्य शाम्यति २३
नावज्जितेन्द्रियो न स्याद्विजितान्येन्द्रयःपुमान । न जयेद्रसनं यावज्जितंसर्वं जितेरसे २४

कई जन्म तक तें किये कारज जगत महान्। कष्ट प्रवृती मिला फल, उपरत होइ सुजान
तीनों ताप विनाश जग दूषित रूप असार । निंद्यत्याज्य उर जान के, पावे शान्ति उदार
दशो इन्द्रियाँ पुष्ट हों, जिह्वा के आधीन । निग्रह रसना करे जब, सब इन्द्रियाँ क्षीन

प्रश्न—गृहस्थियोंको अपने-अपने व्यवहार त्यागनेपर सुख कैसे मिल सकेगा ?

उत्तर—कई जन्मों में जीवों ने उच्च, नीच क्या-क्या चेष्टा नहीं कीं अर्थात् मन, वाणी और शरीर करके सर्व प्रकार के व्यवहार किये हैं, उन सर्व का फल दुःख व प्रवृत्ति मिला है और आज तक कोई भी ठीक-ठीक सुखी नहीं सुना गया । किन्तु सर्व मनुष्य नित्य यही कहते रहते हैं कि यह सुख नहीं ! ! ! और इन पदार्थों के वियोग होने पर कैसे बीतेगी अर्थात् चारों ओर दुःख व विलाप ही सुने जाते हैं । ऐसा जान करके विचार दशा में व्यवहारों को अल्प करना उचित है ॥२२॥

संसार के सर्व पदार्थ झूठे व अनेक दुःखों कर मिले हुये हैं अर्थात् बहुत असार, दुःखदाई हुये सज्जनों कर निन्दित हैं । यह निश्चय करके विद्वान शान्ति को प्राप्त होता है ॥२३॥

मन व सर्व इन्द्रियों के जीते बिना शान्ति कहाँ है । श्रीमद्भागवत् में स्पष्ट लिखा है कि मन व इन्द्रियाँ, सर्व को बलवान् करने वाली रसना है । इसके जीत लेने पर मन व सर्व इन्द्रियाँ स्वाभाविक जीते जाते हैं ।

जैसे वृक्ष की जड़ को जल से सींचने व खाद देने पर बहुत फैलता है और इनके कम होने पर धीरे-धीरे सूखने लग जाता है, इसी प्रकार सर्व को जीवित करने वाली जिह्वा है इसके जीतने से सर्व पर विजय होती है ।

अधिक क्या कहूँ, सर्व कर्त्तव्य रसना के आधीन हैं अर्थात् जो कुछ खाया जाता है उसी के अनुसार मन बनता है, मन के भावों से शुभ, अशुभ कर्त्तव्य होते हैं । अतः सर्व प्रयत्न से पहले रसना को जीतना हितकर होता है ॥२४॥

साधन रूप विभास (२)।

दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता। माशुचः सम्पदं दैवीमभिजातोसि पांडव॥१
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्। दया भूतेष्वलो लुप्त्वमार्दवंह्रीरचापलम्॥२
अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः। मामात्म परदेहेषुप्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः॥३
तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान। क्षिपाम्यजस्रमसुभानासुरीष्वेव योनिषु॥४

दैवी सम्पद मोक्षहित, असुरी बंधन चीन। मतिचिन्ता तुमकरो कछु, दैवी उत्पत्तिकीन॥
त्यागें हिंसाक्षमासत, बिन निंदाअविकार। धतिकोमलतादयासब, लज्जाशान्तिअपार॥
गर्व क्रोध मद काम बल, वशवर्ती अनजान। पर निज पूरण देह में, ईर्षा वैर जुठान॥
शठद्वेषोअपकर्मरति, धारें नीचस्वभाव। अधमजीवसो पुनः पुनि असुरी योनिफिराव॥

प्रश्न—दैवी गुणों व आसुरी प्रकृति से प्राणियों की कैसी गति होती है।

उत्तर—मुक्ति पाने के लिये दैवी सम्पद है और संसार में भ्रमाने का कारण आसुरी स्वभाव माने गये हैं। अर्थात् सात्विकी स्वभाववाले मनुष्यों को इस लोक में विशेष आनन्द होते हुए अन्त में शुभ गति प्राप्ति होती है। और राजस तामस प्रकृतिवाले जीव यहाँ बहुत दुःख पाते हुए परलोक में भी विशेष कष्ट भोगते हैं॥१॥

प्रसंग के अनुसार आगे दैवी गुणों व आसुरी स्वभावों को विशेष स्पष्ट करके लिखते हैं। अर्थात् प्राणीमात्र को मन वाणी और शरीर करके दुःख न देना, सत्य का बर्ताव, क्रोध को जीतकर क्षमा धारण, विशेष मोह (राग) की निवृत्ति, हृदय में कोमलता, निन्दा, चुगली से रहित होना, सर्व पर दया करना, भोगों में लालच का त्याग, कोमल स्वभाव, चंचलता से रहित, इत्यादि दैवी (सत्य गुणों) को धारण करके सज्जन लोग यहाँ सुख भोग कर अन्त में मुक्ति पाते हैं॥२॥

श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं कि देह में अभिमान, पर दुःखदाई पराक्रम, विशेष गर्व (मद) बुरे भोगों की इच्छा, अधिक क्रोधसंयुक्त मनुष्य, मेरे व अपने और दूसरों के देहों में ईर्षा मान करके द्वेष करते हैं॥३॥

सबसे वैर करनेवाले दुष्टात्मा को मैं ईश्वर महान् तामसी योनियों व नरकों में गेरता हुआ विशेष दुःखों कर पीड़ित सदा करता, कराता हूँ इसलिये दैवी व आसुरी रूप शुभ, अशुभ दोनों मार्गों में चलनेवाले मनुष्यों की भिन्न २ दशा मैंने तेरे को कह सुनाई है॥४॥

केवलेन ह्यधर्मेण कुटुम्ब भरणोत्सुकः। याति जीवोध तामिस्रं चरमं तमसः पदम् ॥५
आत्म जाया सुतागार पशु द्रविण बन्धुषु। निरूढ़ मूढ़ हृदय आत्मानं बहुमन्यते ॥६
कलिंसभाजयंत्यार्या गुणज्ञाः सारभागिनः। यत्र संकीर्त्तनेनैवसर्वः स्वार्थोऽभिलभ्यते॥७
नाहं वासामि बैकुण्ठे योगिनां हृदये न च। मद्भक्ताः यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥८

कुटुम्ब अधर्मोपालतेकरके पापमहान्। घोरअंध अति नरकतम, अतिशयबहुदुखपान॥
देह, पुत्रधन, नारि, घर, इनमें ही दृढ़ राग। उत्तम समझे आपको, वह जानोहतभाग॥
गुणज्ञ प्राणी कहें यश, कलियुग उत्तम मान। चिंतन कीरति ईशका, परमारथ पहिचान॥
नहीं बसत बैकुण्ठ में, नहीं योगी के ध्यान। जहाँ मुमुक्षू भक्त कथ, वहीं निरंतर जान॥

प्रश्न—अधर्म से अपने कुटुम्ब की पालना करनेवालों की दशा कहिये।

उत्तर—अपने-अपने कुटुम्ब में दृढ़ राग करके जो गृहस्थी गर्भ में ईश्वर से की हुई प्रतिज्ञा को व नरक आदि की पीड़ा को भूलकर गृह के विशेष कार्यों को सदा करते हैं वह यहाँ मोह, चिंता आदि दुःखों को पाते हुए मृत्यु होने से पीछे तामसी (दुःखदाई) नरकों व चौरासी लाख योनियों में बहुत काल तक अधिक पीड़ा पाते हैं ॥५॥

जो अपनी देह व स्त्री, पुत्र और धन धाम व बैल, घोड़े इत्यादि सम्पत्ति में ही सुख मानते हैं अर्थात् अपने शरीर में अभिमान करके भूल गया है सत्य व असत्य का विचार जिनों को ऐसे प्रमादी मनुष्य देह, पुत्र व स्त्री आदि को प्राप्त हुए अपने को कृतार्थ मानते हैं वह अन्त में महान्-महान् कष्टों को भोगते हुए बहुत पश्चाताप करेंगे ॥६॥

शुभ गुणों व दोषों के यथार्थ स्वरूप को जाननेवाले कलियुग की अधिक प्रशंसा करते हैं कि इस युग में ईश्वर का केवल कीर्त्तन व कथा आदि को सुनते, सुनाते हुए सज्जन शीघ्र मुक्ति के भागी होते हैं ॥७॥

साक्षात् ईश्वर नारदजी को सुनाते हैं कि मैं बैकुण्ठ में सदा नहीं रहता और योगियों के हृदय में नित्य स्थित नहीं होता। किन्तु भक्त व मुमुक्षु जो-जो मेरा स्मरण, कीर्त्तन सदैव करते हैं मैं भी उनके हृदय में नियम से निवास करता हूँ इसलिये सदा ईश्वर में मन लगाना चाहिये॥८॥

नासच्छास्त्रेषु सज्जेत नोपजीवेतजीविकाम्। वाद्विवादांस्त्यजेत्तर्कान्पक्षंकंचनसंश्रयेत्॥९
स्वेस्वेऽधिकारेयानिष्ठासगुणः परिकीर्तितः। विपर्ययस्तुदोषः स्यादुभयोरेष निश्चयः॥१०
ब्रह्मचर्य्यमहिंसां चापरिग्रहं च सत्यम्। च यत्नेन हे रक्षतो रक्षत इति, इति ॥११
आहारशुद्धौसत्वशुद्धिःसत्वशुद्धौध्रुवास्मृतिः। स्मृति लम्भे सर्व ग्रन्थीनांविप्रमोक्षः॥१२

शास्त्र अनातमजीविका,नहीं प्रीति अपवाद। तर्कपक्षसब त्यागके, परमारथ ले स्वाद॥
करेयत्न अधिकारलख,पावेफलहिमहान। हों विपरीतहि दोषसब, यहीनियम दृढ़मान॥
ब्रह्मचर्यहिंसाबिना परिग्रहको नित त्याग। धारसत्य निज यत्न से, होवे सिद्ध सुभाग॥
शुभ आहारहिशुद्धमन, तिसकर निर्मलज्ञान। होत ज्ञान ग्रन्थीनशें, पावें मुक्ति सुजान॥

प्रश्न—चिकित्सा आदि को पढ़ कर गृहस्थी की रक्षा करना ठीक है या नहीं ?

उत्तर—मोक्ष पाने की तीव्र इच्छा वालों को केवल वेदान्त का अभ्यास करना उचित है। अनात्म शास्त्रों के पठन, व पाठन व अनेक प्रकार के वितण्डे बुरी तर्क और पक्षपात के कथन करने से ज्ञान के साधनों में विशेष बाधा होती है ॥९॥

अपने-अपने अधिकार पूर्वक परमात्मा का एक रस (लगातार) अभ्यास (ध्यान) करने से ज्ञान की दृढ़ता द्वारा शीघ्र मोक्ष की प्राप्ति होती है। इस में भूल और उलटा बर्ताव करने से अनेक दोष व परमार्थ में बहुत हानि होती है ॥१०॥

गृहस्थी को शास्त्र विधि से एक अपनी स्त्री का संग करना व त्यागी को सदा ब्रह्मचर्य्य का पालन और मन वाणी व शरीर कर किसी को दुःख न देना व नित्य सत्य का व्यवहार और योग्य आहार करना चाहिये। वेद, वेदान्त में प्रबलता से लिखा है कि मुक्ति की शीघ्र इच्छा वाला अधिकारी संसार के सर्व सुखों व सम्पत्ति में ग्लानि मान कर के सदैव ब्रह्म आत्मा के अभेद का चिंतन (अभ्यास) करता रहै ॥११॥

शुभ व्यवहारों द्वारा स्वधर्म के अनुसार थोड़े में निर्वाह करना और शीघ्र पचने वाले व मन के शोधक साधारण भोजन व मोटा पहरना, यह हितकर हैं, इससे भिन्न राजस, तामस आहार, व्यवहार अधिकारी को विशेष हानिकारक होते हैं ॥१२॥

साधनान्यत्रचत्वारिकथितानिमनीषिभिः। येषु सत्स्वेव सन्निष्ठा यद् भावेनसिध्यति ॥१३
ब्रह्म सत्यंजगन्मिथ्येत्येवंरूपोविनिश्चयः। सोऽयंनित्यानित्य वस्तु विवेकःसमुदाहृतः॥१४
तद्वैराग्यं जिहासा या दर्शनं श्रवणादिभिः। देहादि ब्रह्म पर्यन्ते ह्यनित्येभोग वस्तुनि ॥१५
विरज्य विषय व्राताद्दोष दृष्ट्या मुहुर्मुहुः। स्वलक्ष्येनियतावस्था मन सश्शम उच्यते ॥१६

साधनसम्पद्चारयह, होता इन कर ज्ञान। बिनसाधनहिपाइये, फल भोजन सामान॥
ब्रह्म सत्यमिथ्याजगत,यहनिश्चयउरहोइ। नित्यअनित्यविवेक जो, साधनप्रथमा सोई॥
देखेश्रवणहि भोग सब, ब्रह्म लोक सुहाय इच्छा तजे विवेक धर, पर वैराग्य कहाय॥
दोषदृष्टि सब भोगसे, तजेवासना चित्त। ब्रह्मात्म का ध्यान धर,शमसाधन कहिमित्त॥

प्रश्न—इनसे भिन्न ज्ञान की प्राप्ति में क्या-क्या साधन करने चाहिये ?

उत्तर—विचार १ वैराग्य २ षट सम्पति (छः अंगोंसहित एक साधन) जिसको आगे स्पष्ट किया है ३ और मुक्ति पाने की तीव्र इच्छा ४ इन साधनों की दृढ़ता से ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है अर्थात् जितनी-जितनी इन साधनों में त्रुटि रहती है उतनी-उतनी ज्ञान की प्राप्ति में कसर रहती है। जैसे भोजन बनाने के योग्य सर्व पदार्थ होवें तभी भोजन तय्यार हो सकता है। ब्रह्मज्ञान अति सूक्ष्म है व पाना कठिन है। इसलिये इसके उचित साधन अवश्य चाहिये ॥१३॥

एक ब्रह्म (आत्मा) सत्य है और सर्व जगत् मिथ्या (झूठा) है यह निश्चय करने पर विवेक विचार सिद्ध होता है अर्थात् सत्य व असत्य के निर्णय करने को विवेक कहा जाता है ॥१४॥

इस लोक के पहले देखे हुए व श्रवण किये गये अच्छे-अच्छे पदार्थों और परलोक के दिव्य भोगों में जब भली प्रकार से ग्लानि हो करके इनकी इच्छा निवृत्त हो जाती है इसको वैराग्य समझिये अर्थात् विषयों के समीप प्राप्त हुये कभी उनमें चित्त न ललचाना यह वैराग्य कहलाता है ॥१५॥

मन की राजस, तामस सर्व वृत्तियों को स्व-स्व विषयों से रोक करके अभ्यास में लगा रहना अर्थात् लौकिक व वैदिक सर्व वासनाओं और वृथा मनोराजों का भली प्रकार त्याग कर सदा ब्रह्मात्मा के चिंतन (ध्यान) में मन को लगा रखना यह शम कहा जाता है ॥१६॥

सहनं सव दुःखानामप्रतीकारपूर्वकम् । चिन्ता विलाप रहितं सा तितिक्षा निगद्यते ।१७
शास्त्रस्यगुरुवाक्यस्यसत्यबुद्ध्याऽवधारणम्। सा श्रद्धाकथिता सद्भिर्यया वस्तूपलभ्यते।१८
सर्वदास्थापनं बुद्धेःशुद्धेब्रह्मणि सर्वदा । तत्समाधानमित्युक्तं नतु चित्तस्य लालनम् ।१९
अहंकारादिदेहान्तान्बन्धानज्ञानकल्पितान्।स्वस्वरूपाऽवबोधेनमोक्तुमिच्छामुमुक्षुता२०

होवे उपरति सभीसे, दुःखोंको सहलेव । चिंता नहि प्रतिकार बिन, यही तितिक्षा भेव॥
शास्त्र सत्य गुरु वाक्य में, होय पूर्ण विश्वास । श्रद्धा उत्तम जानिये, होता ज्ञान प्रकाश॥
ब्रह्म शुद्धमें बुद्धि थिर एकलक्ष्यनित जोइ । चित्त चपलता त्याग दे, समाधान तब होइ॥
ब्रह्मातमके बोधहित, अहंकार हि कर हान । उत्कट इच्छा मोक्षकी, मुमुक्षता यह जान॥

प्रश्न—सर्व इन्द्रियों को स्थित करना है यह दम कहलाता है अब मुझे तितिक्षा आदि साधनों के सुनने की इच्छा है ।

उत्तर—पूर्वले अपने संस्कारों (प्रारब्ध) से प्राप्त होने वाले सुख, दुःख व लाभ हानि व हर्ष शोक व चिंता आदि को प्रसन्नता पूर्वक सहलेना अर्थात् विलाप आदि को त्याग करके स्वरूप में सावधान रहना यह तितिक्षा का यथार्थ स्वरूप है ॥१७॥

वेद वेदान्त आदि शास्त्रों के वाक्यों व ज्ञान के उपदेशक सद्गुरु के शब्दों में कुतर्क आदि रहित हो सत्य विश्वास रखना यह श्रद्धा कहलाती है ॥१८॥

सर्व प्रिय पदार्थों में राग को त्याग करके अपनी बुद्धि वृत्ति को तीन गुणों से रहित शुद्ध ब्रह्मात्मा में सदा लगाये रखना अर्थात् विक्षेप (चंचलता) को त्याग करके स्वरूप का एक रस अभ्यास करना इसको समाधान माना है । और अनिच्छित प्राप्त हुये पदार्थों को सर्वथा त्यागन करना यह उपरति कहाती है ॥१९॥

ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति द्वारा देहाभिमान रूप सम्पूर्ण संसार बन्धनों से मुक्ति होने की जो सदैव प्रबल इच्छा है सोई मुमुक्षता जाननी चाहिये । इन साधनों के दृढ़ होने पर सद्गुरु के महावाक्यों द्वारा अभ्यास करके वकैल्य (नित्यमुक्ती) होती है ॥२०॥

प्रतिबन्धो वर्तमानो विषयाशक्ति लक्षणः । प्रज्ञामांद्यं कुतार्कश्च विपर्यय दुराग्रहः ॥२१
अभ्यासेन तुकौंतेय वैराग्येण च गृह्यते । असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्॥२२
समासक्तंयथाचित्तं जन्तोर्विषयगोचरे । यद्येवं ब्रह्मणि स्यात्ततेकोनमुच्येत् बन्धनात्२३
ततः कामक्रोध प्रभृति भिरमुंबंधन गुणै । परं विक्षेपाख्या रजसउरशक्ति र्व्यथति ॥२४
उद्धरेदात्मनाऽत्मानं मग्नं संसार वारिधौ । योगारूढत्वमासाद्यसम्यग्दर्शन निष्टया ।२५

विषय भोगमें रागदृढ़ मन्द बुद्धि है दूज । तीज कुतर्कहि बुद्धि हो, अहंकार दृढ़सूज ॥
मनअतिशयचलरूप है, कठिनजीतनासोइ । वैराग्यरु,अभ्यासकर,प्रहणत भीमनहोइ॥
जैसे प्रेम है भोगमें, ब्रह्म लगे जब तैस । जीव शीघ्र तब मुक्त हो, विलम होइ फिर कैस॥
रागद्वेष विक्षेपमत, साधन सहित विलाय । इत आवरणसमीपगुरु यह वेदान्तबताय॥
ब्रह्मात्म के बोधहित, हंकारहि कर हानि । उत्कट इच्छा मोक्ष की, मुमुक्षता यह जान॥

प्रश्न—शास्त्रों में चार प्रतिबन्ध माने हैं उनकी निवृत्ति कैसे हो सक्ती है?

उत्तर—विषयों में आसक्ति, बुद्धि की मन्दता अनेक कुतर्कें होनी और विपर्य्य (देह अभिमान) इन चारों की निवृत्ति क्रम पूर्वक वैराग्य, विवेक, षट सम्पति और मुमुक्षता कर हो सकती है ॥२१॥

श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं, कि हे अर्जुन ! यह मन अति चंचल है इसका रोकना अति कठिन बल्कि असंभव है । परन्तु तीव्र वैराग्य को धारण करके एक रस अभ्यास करने पर इस मन का मूल (अज्ञान) सहित नाश होता है ॥२२॥

अज्ञानी मनुष्यों का मन जैसे अपने-अपने इष्ट भोगों में आसक्त रहता है जो ऐसा ब्रह्म में लग जाय तब कौन मुक्त नहीं हो ॥२३॥

रजो प्रधान काम क्रोध आदि चंचलता दूर होती है इसको अज्ञान की विक्षेप शक्ति माना है और तमोरूप अज्ञान की आवर्ण शक्ति राहु से ग्रसे हुये चन्द्रमा की नाई ब्रह्मात्म को आच्छाद (ढक) लेती है, तिसको स्वरूप ज्ञान का अभ्यास शीघ्र नाश करता है इस लिये श्रेष्ठ अधिकारियों को उचित है, कि आसक्ति को त्याग करके संसार समुद्र में डूबते हुये आत्मा का अवश्य उद्धार करें ॥२४॥

संसार समुद्र आसक्ति (डूबते हुए) आत्मा को शुद्ध हृदय से आत्म विचार द्वारा जीव ब्रह्म की एकतारूप योग में नित्य लगाते हुए अपना उद्धार करना चाहिये ॥२५॥

के हेतवो ब्रह्मगतेस्तु सन्ति सत्संगतिर्दो नविचार तोषाः।
के सन्ति सन्तो खिल वीतरागा अपास्त मोहाः शिवतत्त्व निष्ठाः ॥१
संतःसदैव गंतव्याः यद्यप्युपदिशान्ति न। याहि स्वैरकथास्तेषामुपदेशा भवन्ति ताः २
किंदुलभं सद्गुरुरस्ति लोके सत्संगतिब्र ह्म विचारणाच।
त्यागोहि सर्वस्य शिवात्मबोधः को दुर्जयः सर्व जनेर्मनोजः ॥३

ब्रह्म प्राप्ति का हेतुकिम, तोष हि दयाविचार। संगसाधुकरराग तजि, निर्मोही ब्रह्मधार॥
संतों के ढिंग जाइये, नहीं करें उपदेश। उनकी कथा स्वाभाव की, हरतीं सकल क्लेश॥
दुर्लभ तीनोंलोक में, गुरु सतसंग विचार। तत्वज्ञान लखुत्यागसब, दुर्जयमनोविकार॥

प्रश्न—संसार के सर्व दुःखों से तरने का कोई सुगम उपाय बताइये?

उत्तर—निष्काम, सर्व हितैषी, ब्रह्मवेत्ता महात्माओं का सेवन (संगति) करना दोनों लोकों के सम्पूर्ण कष्टों को शीघ्र दूर करके परमानन्द को प्राप्त करता है और विषैयी (व्यभिचारी) पुरुषों व स्त्रियों की संगति सत्यमार्ग व ईश्वर से विमुख करके दुःखदाई नरकों व चौरासी लाख योनियों में पीड़ा का कारण हुई सदा भ्रमाती है अर्थात् कुसंग को त्याग करके साँचा सत्संग करना ब्रह्म प्राप्ति का कारण होता है परन्तु सत्संग के योग्य वह संत (सज्जन) होते हैं जो राग, द्वेष आदि विकारों से छुटे हुये व सर्व विपर्य्य (अज्ञान) रहित केवल शिव तत्त्व (ब्रह्मचैतन्य) में निष्ठावान व सदा अभेद चिंतन में तत्पर और अधिकारियों को निष्पक्ष (सत्य-सत्य) उपदेश करने में निपुण (चतुर) होते हैं ॥१॥

तैसे ही सम दृष्टिवान्, शान्त चित्त वाले, क्रोध व पक्षपात आदि दोषों से रहित और सर्व का कल्याण चाहने वाले, सदाचारी (साधनों करके संयुक्त) ऐसे-ऐसे उत्तम लक्षणों सहित महात्माओं के समीप सदा जाना चाहिये, यदि वह उपदेश नहीं भी करते हों। कारण यह है कि उनकी जो स्वाभाविक कथा वार्ता है वही उत्तम शिक्षा रूप होती है ॥२॥

वेदान्त में यह लिखा है कि पहले कहे हुये लक्षणों संयुक्त सद्गुरु का मिलना बहुत कठिन है इसी कारण यथार्थ रीति का सत्संग व सम्पूर्ण विषयों में अन्तरीय वैराग्य और ब्रह्म की प्राप्ति अति दुर्लभ है ऐसे वैसे गुरुओं से परमार्थ का लाभ होना असम्भव है। इसलिये अधिकारियों को अपना गुरु योग्य देख भाल करके करना चाहिये। इसी प्रकार ब्रह्मवेत्ता आचार्य को भी शिष्य बहुत परीक्षा करके करना योग्य है वरन् दोनों की अवनति होती है ॥३॥

दुःसहा राम संसार विषा वेशविषूचिका। योग गारुड़ मन्त्रेण पावनेन प्रशाम्यति ॥४
सच योगःसज्जनेन सह शास्त्र विचारणात्। परमार्थ ज्ञान मन्त्रो नूनंलभ्यत एवच ॥५
अतआत्यंतिकंक्षेमंपृच्छामोभवतोऽनघाःसंसारेस्मिन्क्षणार्धोपिसत्संगःशिवविनृणाम्।६
अयंस्वभाव स्वतएव यत्परश्रमापनोद प्रवणं महात्मनां सुधांशुरेष स्वयमर्ककर्कश
प्रभाभि तप्तामवति क्षितिं किल ॥७

विश्वहलाहल योग से हो विषूचिका पीन। ब्रह्मज्ञानकरदुःख सब होवें प्रति दिन क्षीन ॥
ब्रह्मबोध सत्संग पुनि, श्रवण ज्ञान यह रीत। मंत्र गारुड़ीतीन जब, जन्ममरण नहिभीत ॥
चहेश्रेयनिष्पापअति, प्रतिदिन करशुभअंग। अवधियहीकल्याणकी, क्षणआधासत्संग ॥
संतों के स्वभाव नित, पर के दुःख प्रहार। तपी भानु के भूमि हित, चंद्रकिरणउपचार ॥

प्रश्न—विषयों में राग व अज्ञान दोनों भारी रोग हैं इनका प्रयत्न कहिये।

उत्तर—'सत्य है' शब्द स्पर्श आदि विषयों में आसक्त दृढ़ बन्धन हुआ ब्रह्म ज्ञान का विरोधी होता है इस राग व अज्ञान की निवृत्ति के लिये पहले सत्संग रूप मुन्जस कर काम, क्रोध आदि विकारों को हृदय से निकालना चाहिये पश्चात् निष्काम ब्रह्मज्ञानी से महा वाक्यों को श्रवण करके उसी अर्थ का मनन करते हुये आत्मज्ञान रूप गारुड़ी मन्त्र को प्राप्त हुये विषय आशा व मोह रूप विसूचिका तत्काल दूर होती है ॥४॥

चतुष्टय साधनों युक्त अधिकारी आचार्य के समीप जाकर प्रश्न, उत्तर के क्रमद्वारा सत्य शास्त्रों का यथार्थ विचार व निर्णय (निश्चय) करता हुआ ब्रह्मज्ञान को पाता है ॥५॥

यदि मुमुक्षुओं को कैवल्य मुक्ति की शीघ्र इच्छा हो तो पहले लिखे हुये सद्गुणोंयुक्त महात्माओं का थोड़ा काल भी ठीक-ठीक सत्संग करने पर कल्याण की अवधि प्राप्त होती है ॥६॥

महात्माओं का सहज धर्म यही है कि शरण में प्राप्त हुये शिष्य के संताप दूर करने में सदा तत्पर (तय्यार) रहते हैं जैसे चन्द्रमा अपनी शीतल किरणों से सूर्य से तपी पृथ्वी को सीरा करता है ॥७॥

स्वामिन्नमस्ते नत लोक बंधो कारुण्यसिन्धु पतितं भवाब्धौ ।
मामुद्धरात्मीय कटाक्ष दृष्ट्या, ऋज्व्याऽति कारुण्य सुधाभि वृष्ट्या ॥८॥
एवं गुरूपासनयैव भक्त्या विद्याकुठारेण शतेन धीरः ।
विवृश्च्य जीवाशयमप्रमत्तः संपद्य चात्मानमथत्यजास्त्रम् ॥ ९ ॥
यस्य देवेपराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ । तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशंते महात्मनः॥१०॥
श्रोत्रियोऽवृजिनोऽकामहतोयोब्रह्मवित्तमः । ब्रह्मण्युपरतः शान्तो निरिन्धन इवानलः ॥११।
कोवा गुरुर्योहि हितोपदेष्टा शिष्यस्तुकोयो गुरुभक्त एवं ।
को दीर्घ रोगो भव एव साधो किमौषधन्तस्य विचार एव ॥१२॥

जगबन्धोगुरुदयानिधि, नमोकरूं लखवार । अमीबूंदकीवृष्टिसे, भवजलअग्निनिवार ॥
सद्गुरुभक्तीसेवकर, तीक्ष्णज्ञानकुठार । जीवहिभाव प्रमादितजि, भ्रांतीतीननिवार ॥
भक्ती जैसी ईशमें, तैसी हो गुरुमाँहि । मनुज श्रेष्ठ के उरविषे, ब्रह्मप्रकाशित ताहि ॥
लखे वेद वेदान्तको, निर्लोभीब्रह्मचीन । शान्ति उपरती श्रेय प्रद. गुरु लक्षण यह बीन ॥
करते हितउपदेशगुरु, शिष्य भक्तिगुरुलीन । जगहीभारीव्याधिहै ब्रह्मविचारहिलीन ॥

प्रश्न–जब योग्य सद्गुरु प्राप्त हों तब उनकी प्रार्थना कैसी की जाये ?

उत्तर–बहुत आधीन होकर उचित वाक्यों से सद्गुरु की स्तुति करने पर प्रसन्न हुये सद्गुरु के समीप अपना संशय प्रगट करना चाहिये "कैसे"

हे स्वामिन्, हे कृपानिधे, हे दीन रक्षक ! मैं बारम्बार आपको नमस्कार करता हूँ कि संसार रूप समुद्र में गोते खाते हुये मुझ शरणागत को पार कीजिये । इस प्रकार बिनती करने पर प्रसन्न हुये सद्गुरु मुक्ति का द्वार अवश्य दिखाते हैं ॥८॥

दयालु सद्गुरु के यथार्थ उपदेशरूप तीक्ष्ण फरशे को पा करके अभ्यास रूप सान पर लगाते हुए देह अभिमान रूप वृक्ष को जड़ समेत उखाड़ देने से ब्रह्म आत्मा के अभेद ज्ञान को प्राप्त होकर कैवल्य मुक्ति होती है ॥९॥

जिसकी परमात्मा देव में दृढ़ भक्ति है जब ऐसा प्रेम सद्गुरु में हो तब उसके हृदय में जीव ब्रह्म की एकता का ज्ञान होता है ॥१०॥

प्रसंग को पाय कर सद्गुरु के और लक्षण वर्णन करते हैं । वेद, वेदान्त के भावों को यथार्थ जानने वाला व भय तृष्णा आदि दोषों से रहित और प्रकाशित अग्नि के तुल्य दोषों को जराने में समर्थ्य सद्गुरु अधिकारी के अज्ञान को निवृत्ति कर सकता है ॥११॥

संक्षेप से गुरु व शिष्य के लक्षण यह हैं कि जो सदैव शिष्यों का कल्याण चाहता है वह सद्गुरु और निष्कपट होकर गुरु का जो अनन्य भक्त (आज्ञा मानने वाला) हो वह शिष्य है ॥१२॥

विद्वान्स तस्मा उपसत्ति मीयुषे मुमुक्षवे साधु यथोक्त कारिणे।
प्रशान्त चित्ताय शमाऽन्विताय तत्त्वोपदेशं कृपयैव कुर्यात् ॥१३॥
नापृष्टःकस्यचिद्ब्रूयान्न चान्यायेनपृच्छतः।जानन्नपिचमेधावी जड़वल्लोकमाचरेत्॥१४
अपरोक्षात्म विज्ञानं शाब्दं देशिकपूर्वकम्। संसार कारणाज्ञान तमसश्चंड भास्करः ॥१५
आत्मलाभात्परोलाभोना स्तिलोकत्रयेयतः। सदत्तो येन तस्मैका दक्षिणानात्म संश्रया॥१६

होशरणागत मोक्षरुचिआज्ञा पालितशाँति।नम्रस्वभावहिकाम जित गुरु उपदेशहि भाँति
बिन पूछे अन्याय से,किसी किंच नहि कहन। बोध वेद वेदान्त लखि, जड़कीं नाई रहन
ज्ञान होइ उपदेश गुरु, दया सुक्ख की राश। दुःख हेतु संसार तम तिसको सूर विनाश
लोक तानके लाभ सब,उनसे उत्तम ज्ञान। दीनी सद्गुरु वही निधि, को भेंटा सम जान

प्रश्न–सद्गुरु के समीप जब अधिकारी जावे तब गुरु उसके संग कैसा व्यवहार करें?

उत्तर–नम्रता आदि शुद्ध भावना संयुक्त व काम क्रोध आदि विकारों से रहित साधन संग्रह करने वाला और सद्गुरु की योग्य आज्ञा को पालने वाला मुमुक्षु, जब सद्गुरु की शरण को प्राप्त होवे तब पूर्ण दया दृष्टि से क्रम द्वारा उसको यथार्थ ब्रह्म विद्या का उपदेश देवें ॥१३॥

पहले कही योग्यता से रहित और बिना पूछे हुए शिष्य को सद्गुरु ब्रह्म विद्या का उपदेश न करे किन्तु वेद, वेदान्त के यथार्थ तत्त्व को जानता हुआ भी संसार में जड़ की नाईं विचरे। कारण यह है कि अनाधिकारी को दी हुई ब्रह्म विद्या निष्फल रहकर अनेक दोषों को प्राप्त करती है। जैसे वर प्राप्ति के योग्य सुशील कन्या नपुंसक को विवाह देने पर महान् अपकीर्ति व अपार हानि होती है तैसे ही भय, लोभ आदि के वश होकर अनाधिकारी को ब्रह्म विद्या दी हुई विशेष हानि करती है ॥१४॥

यथार्थ अधिकारी को प्रदान की गई ब्रह्मविद्या प्रकाशमान सूर्य के तुल्य तमरूप अज्ञान को नष्ट करती है परन्तु निष्ठावान् सद्गुरु के बिना शिष्य का अज्ञान और सहस्रों उपायों से निवृत्ति नहीं होता अर्थात् ब्रह्म-ज्ञानी का उपदेश संसार तम को शीघ्र दूर करता है ॥१५॥

आत्मज्ञान के सदृश्य तीनों लोकों में दूसरा कोई ऐश्वर्य व आनन्द नहीं वह ज्ञान जिन्होंने प्रदान किया है उनकी दक्षिणा के लिये चौदह भवनों में कोई पदार्थ योग्य नहीं जो सद्गुरु की भेंट में अर्पण किया जावे। हेतु यह है कि सर्व अनात्म पदार्थ असत्य, जड़ व दुःख रूप हैं इसलिये मैं गद्-गद् हुआ सद्गुरु को कोटि बार धन्यवाद करता हूँ ॥१६॥

निपुणैःपरीक्षमाणे निगमतुलाया मुभौसभा रोप्य।
गुरुरभवदीश्वरादपि गुरुरिति तन्नाम सार्थकं नाम ॥१७॥
एकाक्षर प्रदातारं यो गुरुं नाभिकन्यते। शुनां योनि शतं गत्वा चांडालेष्वभिजायते॥१८
आसुप्तेरामृतेःकालं नयेद्वेदान्तचिन्तया। दद्यान्नवसरं किंचित्कामादीनां मनागपि॥१९
दिने दिनेतु वेदान्त श्रवणाद्भक्तिसंयुतात्। गुरु शश्रूषयालब्धात्कृच्छ्राशीतिफलंलभेत्॥२०

ज्ञानी जोखें तुला धर, गुरुईश इन दोइ। ईश्वर से बोझल गुरू, सफल शब्द गुरु सोइ।
दाता अक्षर ब्रह्मके, उनका सेवन नाहिं। श्वान जन्म शत पाइकर, चांडालहि घर माहिं।
जाग सुषुप्तिविदेहलग,नित वेदांत विचार। काम क्रोध दुर्वासना नहि हों कभी प्रचार।
प्रतिदिन जो वेदांतसुन,गुरुसेवानित्तजोइ। व्रतचंद्रायणअसीफल, नित्य सभी उस होइ।

प्रश्न–ज्ञानदाता गुरु की महिमा सर्वज्ञों ने कुछ और भी कही है?

उत्तर–महान्-महान् सर्वज्ञों ने निगम, आगम (वेद, शास्त्र) रूपी तराजू (नर्जा) बना करके सर्वेश्वर व सद्गुरु की जब विचार द्वारा परीक्षा की तब ईश्वर से गुरु बहुत भारी (प्रभाववाले) जानकर गुरु शब्द को सार्थक जाना अर्थात् गुरुनाम बड़े का होता है सो गुरु ईश्वर से भी महत्तावाला है॥१७॥

अक्षर (नाशरहित) एक परमात्मा का ज्ञान जिन्होंने प्रदान किया है उनके महान् उपकार को भूलकर कृतघ्न हुआ जो अविज्ञा करता है वह अनेक बार कूकर आदि देह को पाता हुआ अन्त में चाण्डाल के घर जन्म लेकर दरिद्र आदि से पीड़ित रहता है॥१८॥

जागने से सोने तक व गुरु की शरण से विदेह मुक्ति लग जिज्ञासुओं को एक रस ब्रह्म अभ्यास करना चाहिये कि जिसके प्रभाव से अहंकार आदि दुर्वासना छूट करके परमपद प्राप्त होने पर गुरु पदवी के योग्य होता है ॥१९॥

बहुत प्रेम सहित सद्गुरु की योग्य सेवा करता हुआ जो मुमुक्षु, शास्त्र की विधि से वेदान्त अर्थ को सद्गुरु से श्रवण करके सदैव अभ्यास करता है वह नित्य प्रति (एक-एक दिन) में अस्सी चंद्रायणों के व्रत किये हुये फलों को प्राप्त होता है इससे यह सिद्ध हुआ कि वेदान्त अर्थ के अभ्यास तुल्य दूसरा कोई भी साधन श्रेष्ठ नहीं है इसलिये अधिकारियों को आलस्य व वृथा व्यवहारों को त्याग करके ब्रह्मविद्या का सदा (एकरस) अभ्यास करना योग्य है ॥२०॥

वासनानेक कालीना दीर्घ कालं निरंतरं । सादरं चाभ्यस्यमाने सर्वथैव निवर्त्तते ॥२१
विचारात्तीदणतामेत्यधीःपश्यतिपरंपदम । दीर्घ संसार रोगस्य विचारोहितमौषधम् ॥२२
वेदान्तार्थ विचारेण जायते ज्ञानमुत्तमम् । तेनात्यन्तिक संसारदुःखनाशोभवत्यनु ॥२३
तावद्गर्जन्तिशास्त्राणिजंबुकाविपिनेयथा । नगर्जति महाशक्त्यिोवद्वेदान्तकेशरी ॥२३

बहुतसमयकीवासना, कालदीर्घ अभ्यास । नित्य विचारहिप्रीति से, सभी वासनानास ॥
तीक्षण बुधि विचार से, होइ ब्रह्मका ध्यान । दीर्घ रोग संसार की, ज्ञान औषधी जान ॥
अर्थबिदान्तविचारनित, उपजतसम्यकज्ञान । नाशें सब संसार दुख, होइ मुक्त विद्वान ॥
शास्त्रअपर शिरगालसम, तबलगबोलेंनोक । वेदान्त प्रबल केशरी, जब नहिंगर्जतठीक ॥

प्रश्न—अनादि काल की दृढ़ हुई वासनाऐं किस उपाय से दूर होती हैं ?

उत्तर—अनेक जन्मों की वासनाऐं जो हृदय में भर रही हैं वह दीर्घ काल तक एकान्त में स्थित होकर तीव्र अभ्यास करने पर धीरे-धीरे छूट जाती हैं पूर्व व अब की सर्व वासनाओं के दूर करने के लिये ब्रह्म अभ्यास से भिन्न और कोई यत्न नहीं है इसलिये भगवद्गीता में मन के वश करने के लिये वैराग्य व अभ्यास ही मुख्य साधन लिखे है ॥२१॥

जीव ब्रह्म की एकता को सिद्ध करनेवाली शास्त्रों की सत्य युक्तियों से ब्रह्मज्ञान की दृढ़ता होती है । जन्म मरण के सर्व दुःखों से छुड़ानेवाला तत, त्वं का विचार (अभ्यास) ही परम औषधि हैं ॥२२॥

वेदान्त अर्थ के अभ्यास करने पर ब्रह्मात्मा का अनुभव शीघ्रहोता है उस करके संसार की सम्पूर्ण आपत्तियों की जड़ उखड़ जाती है तब जीवन मुक्त दशा को पा करके विद्वान् सर्व आनन्द की खानि निर्वाण पद में विश्राम पा करके कृतकृत्य होता है ॥२३॥

संसार रूप सघन बन में और सर्व शास्त्र रूप बनचारी जीव अनेक प्रकार के अपने-अपने भाव रूप शब्दों को तब तक प्रगट कर सकते हैं कि जब तक महान् शक्तिवाला वेदान्त रूप केसरी सिंह उच्च सिद्धान्त रूप गर्जना नहीं करता अर्थात् अन्य सम्पूर्ण शास्त्रों का पठन, विचार तब तक होता है कि जब तक वेदान्त का यथार्थ सिद्धान्त जानने में नहीं आया । न्याय, व्याकरण, पूर्वमीमांसा आदि शास्त्रों का पठन वेदान्त अर्थ के सिद्धि के लिये होता है । इसलिये मुमुक्षुओं को वेदान्त का ही सदा अभ्यास करना उचित है ॥२४॥

किञ्चित्संस्कृतबुद्धीनांश्रतं शास्त्रमिदंयथा। मौरव्योपहं तथाशास्त्रमन्यदस्तिनकिञ्चन।२५
समुद्रस्यैवगाम्भीर्यं धैर्यंमेरोरिवोस्थितम्। अंतःशीतलता चेन्द्रोरिवोदेति विचारिणः।२६
इदंश्राव्यं सुखकरं यथादृष्टान्त सुंदरम्। अविरुद्धमशेषेण शक्यं वाक्यार्थं बन्धुना।२७
युक्ति युक्तमुपादेयं वचनं बालकादपि। अन्यतृणमिव त्याज्यमप्युक्तं पद्मजन्मना।२८

बुद्धि होइ जो अल्पभी, आगम यही विचार। शीघ्रनशेअज्ञानसब, नहिं औरहिं उद्धार।
नितबासिष्ठविचार कर, मन वारिध गम्भीर। थिर बुद्धीहोमेरुसम, चंदन चन्द्रहिसीर।।
पर मारथके ज्ञानहित, जिसकी उत्कटचाह। युक्तिपूर्णसुन्दरसुखद,कर विचारउत्साह।
प्रबलयुक्ति स्वीकारसत, बालनारिका होइ। बिनायुक्त फलकूरतजि,कहैं बिधाता जोइ।

प्रश्न—सम्पूर्ण शास्त्र सत्य (प्रमाण) रूप हैं आप एक वेदान्त को मुख्य क्यों कहते हैं ?

उत्तर—अपने-अपने स्थान पर अधिकारी भेद करके सर्व शास्त्रों के पढ़ने, विचारने की सफलता है। परन्तु संसार बन्धनों से शीघ्र छुड़ानेवाला एक वेदान्त शास्त्र ही शिरोमणि है कारण यह है कि अल्प बुद्धि सरल मनुष्य पद, पदार्थों को थोड़ा-सा जानकरके वेदान्त का विचार करने पर अज्ञान रूप मूर्खता को सुगम नाश कर सकता है। वेदान्त शास्त्रों में भी श्रीयोग वासिष्ठ व अष्टावक्रगीता यह दोनों सर्वोत्तम माने गये हैं ॥२५॥

इन दोनों ग्रन्थों के विचार करने पर मनुष्य का हृदय समुद्र के तुल्य अथाह व सुमेरु पर्वत के सदृश अचल (गम्भीर) और पूर्णमासी के चन्द्रमा के समान शीतल होता है अर्थात् इनके अभ्यास की सर्व महिमा शेश, शार्दा भी नहीं कह सकते हैं ॥२६॥

इन ग्रन्थों में प्रबल-प्रबल युक्तियाँ लिखी हैं जो संसार से शीघ्र पार करनेवाली हैं परन्तु उन युक्तियों (दृष्टान्तों) का जो-जो अंश द्राष्टान्त से मिलता हो उसी को घटाना चाहिये अनात्मरूप दृष्टान्तों के सर्वांश ब्रह्म से नहीं मिल सकते हैं जो मनुष्य दृष्टांतों को सर्वांगों सहित द्राष्टान्त में घटाना चाहते हैं उनके संशय कभी दूर नहीं होते इसलिए वह सिद्धान्त के यथार्थ तत्व को नहीं पहुँच सकते ॥२७॥

यथार्थ युक्तियों से भरा हुआ व सार अर्थ को कहनेवाला जो बालक का भी वाक्य हो वह भी विशेष आदरनीय है। और युक्ति रहित संसार को कहनेवाला वाक्य जो साक्षात् ब्रह्मा आदि का भी हो उनको भी त्याग देना चाहिये ॥२८॥

उच्छास्त्रंशास्त्रितंचेतिद्विविधंपौरुषंस्मृतम । तत्रोच्छास्त्रमनर्थाय परमार्थाय शास्त्रितम ॥१
असदैवमधः कृत्वा नित्यमुद्रिक्तया धिया। संसारोत्तरणं भूत्यैर्यतेताधातुमात्मनि ॥२
आलस्यं यदि न भवेज्जगत्यनर्थः कोनस्याद्वहुधनिको वहु श्रु तो वा।
आलस्यादियमवनिःसासागरान्ता संपूर्णा नर पशुभिश्च निर्द्धनैश्च ।३।
तस्मात्प्राक्पौरुषादैव नान्यत्तात्प्रोज्झ्य दूरतः।साधुसङ्गमसच्छास्त्रैर्जीवमुत्तारयेद्वलात् ।४

शास्त्रविरोधीविहितपुनिदोविधिपौरुषजान। करे निषिद्धअनर्थसबविहितमोक्षकरमान।
कर पुरुषारथदैवतजि, आत्महेतु उद्धार। साधन सबही पुष्टकर, पुरुषारथ नित धार।
नहिं आलस्यव्यधानजब,संपतिपण्डित होग। अज्ञमनुष्य हिदैववश,बिनसंपतिपशुलोग।
पौरुष भूतअरब्धबहु, अपना यत्न प्रधान। आलस दैवहिदूरतजि, उद्धारहि तब जान।

प्रश्न—पुरुषार्थ व प्रारब्ध का यथार्थ रीति से निर्णय कीजिये ?

उत्तर—पुरुषार्थ दो प्रकार का माना गया है वह आगे स्पष्ट करते हैं। एक शास्त्र के अनुसार साधन रूप अभ्यास आदि पुरुषार्थ मुक्ति के लिए और दूसरा अशास्त्रीय संसार के पदार्थों के निमित्त पुरुषार्थ वह अनर्थ (बंधन) के लिये होता है। जो जैसा करता है वैसा ही फल पाता है ॥१॥

आलसी मनुष्यों करके आश्रय किया गया आलस्य रूप जो दैव है उसको त्याग करके पुरुष प्रयत्न अर्थात् बुद्धि पूर्वक विचार करना चाहिये और संसार के तरने, आत्म उद्धार के लिये शास्त्रीय उपाय सदा करते रहना चाहिये।

कोमल, तीव्र दो प्रकार की खोटी प्रारब्ध को दूर करने के लिये शास्त्रीय प्रयत्न सदा करना योग्य है केवल प्रारब्ध के भोगने के लिये चौरासी लाख जीव नित्य भ्रमते हैं मनुष्य देह व श्रेष्ठ बुद्धि केवल शास्त्रादि पुरुषार्थ करने पर सफल होती है और दैव नाम आलस्य का है इसको अवश्य त्यागना चाहिये।२

यदि मनुष्य आलस्य न करके पुरुषार्थी होता तब दुखी न रहता किन्तु आलस्य करके कई मूर्ख, दरिद्री बने रहते हैं इसलिए आलस्य रूप दैव को छोड़ शास्त्रीय पुरुषार्थ का आश्रय लेकर सुख व परम गति प्राप्त करनी चाहिये।३

पहिले जन्मों में किये हुये पुरुषार्थ को आलसी लोग दैव कहते हैं इस लिये मनुष्य देह व श्रेष्ठ बुद्धि को पाकर के विचार आदि प्रयत्न करते हुये परमार्थ का लाभ अवश्य हो सकता है शास्त्रीय पुरुषार्थ के बिना मनुष्य पशुओं के तुल्य माना जायेगा ॥४॥

संतोषः परमोलाभः सत्संगः परमागतिः। विचारः परमं ज्ञानं शमो हि परमं सुखम् ।५।
निर्मान मोहाजित संग दोषा अध्यात्म नित्य विनिवृत्त कामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुख दुःख संज्ञैर्गच्छन्त्यमूढ़ाः पदमव्ययंतत् ॥६॥
विविक्तसेवीलध्वाशीयतवाक्काय मानसः। ध्यान योग परो नित्यं वैराग्यंसमुपाश्रितं ।७।
अहंकार बलं दर्पंकामं क्रोधं परिग्रहम्। विमुच्य निर्ममः शांतो ब्रह्म भूयाय कल्पते ।८।

परमलाभसंतोषयह,साधु संगकल्यान। उत्तमज्ञानविचार लखि, सर्वसुक्ख शमजान।
मानमोहसंगतोषतजि, करि सिद्धान्त विचार। निष्काम निर्द्वंदसब, अव्ययपदकोधार।
खाय अल्प एकन्त रहि, देह वाक मन जीत। धारे जो वैराग्यपर, ध्यान योगसहिप्रीति।
अहंकार मदकामतजि,परिग्रह क्रोधहि और।गतममतारहिशांतिमनब्रह्मज्ञानलहिठौर।

प्रश्न—मोक्ष के जो द्वारपाल (मुख्य साधन) हैं वह स्पष्ट कहिये।

उत्तर—मुक्ति रूप दिव्य भवन में प्रवेश होने के लिये संतोष, साधु संग वासना का त्याग, ब्रह्म विचार यह साधन श्रेष्ठ हैं अर्थात् संतोष उत्तम लाभ, सत्संग परम गति, विचार यथार्थ ज्ञान और शम (मन का जीतना) इन उपायों से शीघ्र कल्याण होता है ॥५॥

गर्व, स्वार्थ, मोह आदि दुर्वासना, खोटी संगति को त्याग कर अधिकारी को सदा ब्रह्म विद्या का विचार करते हुये राग द्वेष आदि से रहित सुख, दुःख में समचित (धीरज) रखना चाहिये इत्यादि साधनों से मुमुक्षुओं को परम पद की प्राप्ति होती है ॥६॥

सादा व अल्प आहार, एकान्त निवास, सर्व इन्द्रियों को जीत करके मनको वश में रखना अर्थात् पर वैराग्य को धारण करके अभेद ज्ञान का चिंतन करने से सहज में मुक्ति प्राप्त होती है ॥७॥

देह अभिमान, वृथा पराक्रम, घमण्ड (मद) काम, क्रोध और प्रतिग्रह का विशेष उठाना और ममता (स्वार्थ) इत्यादि दुर्गुणों को त्याग करके शान्ति स्वभाव वाला अधिकारी ब्रह्म प्राप्ति के योग्य होता है और जो इन साधनों को धारण न करके मुक्ति चाहता है वह वृथा परिश्रम करता है जैसा कोई बोता है वैसा फल पाता है जो नीम बोवे वह निमोली पाय और आम बोने पर आम्र फल प्राप्त होते हैं इस लिये ज्ञान की प्राप्ति के लिये योग्य साधनों की आवश्यकता है ॥८॥

यतो यतो निश्चरति मनश्चंचलमस्थिरं । ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥९
शमोदमस्तपः शौचंक्षांतिरार्जवमेवच । ज्ञानंविज्ञानमास्तिक्यंब्रह्मकमस्वभावजम् ॥१०

भिक्षाहारमदैनयमप्रतिहृतंभीतिच्छिदंसर्वदा ।
दुर्मात्सर्यमदाभिमानमिथुनंदुःखौघविध्वंसनम् ॥११॥
सर्वत्रान्वयमप्रयत्नसुलभंसाधुप्रियंपावनंशंभोः ।
सत्रमवार्यमक्षयनिधिशंसतियोगीश्वराः ॥१२॥

जिस जिस कारण भूत मन,होवे चंचल शैन । तिस तिस कोही दूर कर आतम चिंतन ऐन ।
शम, दम, आर्जव शौच,तप क्षमा ज्ञान विज्ञान । धारे आस्तिक धर्म नव,वही ब्राह्मण जान।
भिक्षाहार अदीनता अक्षय भीती छेद । अघ मद ईर्षा गर्वसब, होइ दुःख उच्छेद ।
मिले देशसबयत्नबिन,पवित्रसाधुनप्रेम । नहीं निवारणयज्ञ शिव,बहुत योगसुख क्षेम ।

प्रश्न—जिस उपाय से मन वश हो वह युक्ति कृपा करके बताइये ।

उत्तर—जिस जिस कारणसे मन चंचल व निन्द्रा को प्राप्त होता है पहले उसी को त्यागना उचित है अर्थात् विषयों के चिन्तन व राजसी व्यवहारों के करने से मनमें चपलता (बुरी प्रवृत्ति) और भारी व चिकने विशेष आहारों के खाने पर मन तन्द्रा, निन्द्रा में लय होता है । इसलिये इनका त्यागना आवश्यक है ॥९॥

ब्राह्मणों व मुमुक्षुओं के जो जो लक्षण भगवद्गीता में वर्णन किये हैं वह मनको वश करने के लिये और मुक्ति प्राप्ति के अर्थ सर्वोत्तम हैं । अर्थात दुर्वासनाओं को अपने हृदय से निकालना,इन्द्रियों को रोककर सत्यमार्ग में चलाना, राग, द्वेष का त्यागरूप अन्तर शौच, अपनी देहको कृष रखना, निष्कपट व्यवहार, तितिक्षा का सहन, वेदान्त गुरु आदि वाक्यों में विशेष श्रद्धा, एकता का ज्ञान और ब्रह्मात्मा का दृढ़ बोध (विज्ञान) यह नौ (९) लक्षण मुक्ति चाहने वाले सज्जनों, ब्राह्मणों में अवश्य होने चाहिये ॥१०॥

अपने हाथों से लाई भिक्षा साधुओं को निराहार व्रत के तुल्य है और दीनता, भय त्रास ईर्षा, गर्व व क्रोध, काम आदि दोषों व दुःखों की नाशक व सर्व दैवी गुणों की खानि है ॥११॥

यह भिक्षा सर्व स्थानों में सुलभ, महान् हितकारी, त्यागियों को पवित्र और विरक्तों को प्रिय व सदा शिव के यज्ञ के समान प्रभाववाली है इसमें कोई बाधा व उपद्रव नहीं है और ग्रहस्थों को देनी सुगम है यह भिक्षा मन की शोधक और ज्ञान में सहकारी होती है । इसलिये श्रेयार्थी साधुओं को सदा भिक्षा (माधूकरी) मांग कर खाना चाहिये ॥१२॥

अन्नदानपरो भिक्षुश्चत्वारि हन्ति दानतः। दातारमन्नमात्मनं यस्मै चान्नं प्रयच्छति ।१३
बीजघ्नं तैजसं पात्रं शुक्रोत्सर्गं सितांबरम्। निशान्नं च दिवास्वप्नं यतीनां पतनानि षट् ।१४
तितिक्षा ज्ञानवैराग्यशमादिगुणवर्जितः। भिक्षा मात्रेण यो जीवेत्स पापी प शुवन्नरः ।१५
श्रवणं मननं ध्यानं स्वाध्यायं ज्ञानमेव च। सद्यो नश्वरतां याति सकृच्छ्राद्धान्न भोजनात् ।१६

अन्न दान भिक्षा करे, हत्या पावे चार। अन्न आतम पुनि देय जिस, दाता देवनहार।
धातु पात्रहि भोज्य पच, तजे शुक्र पट श्वेत। निशिभोजी बहुसोइ दिन, पतित करन का हेतु।
ज्ञान तितिक्षा विरतिता, शम आदी गुणहीन। खावे भिक्षा माँगकर, नहीं ज्ञान पशु चीन।
श्रवण मनन अरु ध्यान तप, होवे कोमल ज्ञान। अन्न श्राद्ध का खायकर, कृत निष्फल सब जान।

प्रश्न—साधु (सन्यासियों) के और धर्म संक्षेप से वर्णन कीजिये।

उत्तर—साधुओं को निर्वाह से अधिक संग्रह करना और किसी को कुछ दान देना बहुत दोषकर है अर्थात् जो त्यागी हुआ देह की विशेष अनुकूलता के लिये अधिक प्रतिगृह लेता है वह महान् अधोगति को प्राप्त होता है और दूसरों के लिये अन्न आदि का दान करने पर चार हिंसा का दोष लगता है यानी अपनी व जिसको दिया है व जिससे लिया जावे और अन्न की इन चार हिंसा के पाप अन्न दाता साधु को सदा लगते हैं यह धर्म में अधर्म होता है और उनके अन्न का भोक्ता बहुत दोष का भागी होता है ॥१३॥

अन्न का पकाना, धातु का पात्र, जान के वीर्य का त्याग, सफ़ेद वस्त्रों का पहिरना, दिन को विशेष सोना, रात्रि का भोजन, धूम्र पान, पुष्टिकर पदार्थों का भक्षण इत्यादि व्यवहार साधु (त्यागी) को सर्वथा वर्जित हैं ॥१४॥

सरदी, गरमी व मान, अपमान इत्यादि सब द्वंदों का सहन, ब्रह्मात्मा का सदा अभ्यास, स्वधर्म विरुद्ध पदार्थों का त्याग और मन, इन्द्रियों का जीतना, एकांत में निवास यह साधु के उत्तम धर्म हैं, इनसे रहित भिक्षा माँगकर खाने से वह अधोगति अवश्य पाता है ॥१५॥

श्राद्ध, तेरहवी, दष्टौन, बड़ी-बड़ी परवियों में तीर्थों पर माधूकरी के सिवाय किसी अन्य प्रकार का भोजन करने से साधु के किये हुए वेदांत का श्रवण, मनन, निदिध्यासन और कोमल ज्ञान इत्यादि सर्व सुकृत निष्फल होते हैं। इसलिये कल्याण चाहने वाले को ऐसे अवसरों पर नित्य बचना उचित है ॥१६॥

निःसंगता मुक्ति पदं यतीनां संगादशेषाःप्रभवंति दोषाः ।
आरूढ़ योगोऽपि निपात्यतेऽधः संगेन योगी किमुताल्प सिद्धिः ।१७।
अजिह्वः खण्डकःपंगुरंधो बधिर एवच । मुग्धश्च मुच्यते भिक्षुः षडभिरेतैर्न संशयः ॥१८
अहिंसा ब्रह्मचर्यं च सत्यमार्जवमेव च । अक्रोधश्चानसूया च दमोनित्यमपैशुनम् ॥१९
वागादि दंड युक्तस्तु प्रत्यगात्मन्यवस्थितः।परे ब्रह्मणि लीनो यःसत्रिदंडीव्यवस्थितः॥२०

संग त्याग नित श्रेय अति,दोष समूह कुसंग । दृढ़योगीभी गिरे अध,होवे साधक भंग ।
सर्व इन्द्रियाँ जीतकर,मन को जीते ठीक । भिक्षु सोइ मुक्ति लख, संशय नाहीं लीक ।
ब्रह्मचर्यधरदयासत,क्षम आर्जव सब प्रेम । अनिंद इन्द्रिय शमनसब,तप भिक्षुदशनेम ।
वाक आदि पर दंड धर,आतम निष्ठा ध्यान । शुद्धब्रह्म मेंलीन चित्त,वही त्रिदंडीजान ।

प्रश्न—साधुओं के शीघ्र कल्याणकारी कर्त्तव्यों को सुनना चाहता हूँ ।

उत्तर—यतियों, साधुओं को सर्व संग का त्याग ही मुक्ति का द्वार (साधन) है, कुसंग व अधिक संग्रह करने पर सर्व दोष साधु को लगते हैं अर्थात् कुसंग आदिकर बड़े-बड़े सिद्ध भी गिर जाते हैं। मुमुक्षु (साधु) का तो कहना ही क्या है ॥१७॥

सत्य, हित, मित (थोड़ा) बोलना, षटरसों में ग्लानि सुन्दर स्त्री को भी देखकर सावधानता, विशेष भ्रमन नहीं करते सदा ब्रह्म विचार में तत्पर (स्थिति), दृष्टि (नज़र) को विशेष फैला कर नहीं देखना, सर्व तितिक्षा का सहन, अनिच्छित प्राप्त हुए का भी त्याग, इत्यादि उत्तम धर्मों की धारणा से साधु शीघ्र ज्ञान के द्वारा मुक्ति पाता है ॥१८॥

मन, वाणी, शरीर से किसी को दुःख न देना, ब्रह्मचर्य का धारण, निष्कपट व्यवहार, सर्व का हित चाहना, गर्व क्रोध आदि का त्याग, निन्दा चुगली से रहित होना, यह धर्म साधु को नित्य कर्त्तव्य हैं ॥१९॥

वाणी, मन, सर्व इन्द्रियों को दण्ड देना अर्थात् सदा वश में रखना व ब्रह्मात्म के ज्ञान में निष्ठा (स्थिति), ब्रह्म के चिंतन में सदा लगे रहना इत्यादि धर्मों कर संयुक्त यति (साधु) त्रिदण्डी कहाता है। स्वामि शंकराचार्य दण्ड के स्थापक हैं उन्होंने त्रिदण्डी के यही लक्षण कहे हैं बाह्य चिन्ह उन धर्मों को जताते हैं परन्तु दण्ड देने की जगह दण्ड का लेना यह समझ में नहीं आता अर्थात् अच्छे-अच्छे नियमों का पीछे बिगड़ करके और उलटे रूप में हो जाना जीवों की दुर्भाग्यता से होता है कुछ आश्चर्य नहीं ।२०।

शास्त्रावबोधा मलयाधिया परम पूतया । कर्तव्यः कारणज्ञेन विचारोऽनिशमात्मन ।१।
मोहेन बन्धुनाशेषु संकटेषु शमेषु च । सर्वं व्याप्तंमहाप्राज्ञविचारोहि सतांगतिः ।२।
दुःखखण्डकमास्थूलं विपन्नवलरतामधुः । राम दूरे परित्याज्यो निर्विवेकोनराधमः ।३।
वेदवेदान्तसिद्धान्तस्थितियःस्थितिकारणम्। निर्णीयन्ते विचारेणदीपेनच भुवोनिशि ।४।

मुमुक्षु निर्मलबुद्धि कर,शास्त्र जन्य हो ज्ञान । बोधनिरंतर कीजिये, विचारपंच प्रधान ।
भय संकटअरु बन्धयह,प्रमाद मूलकहोइ ।.सज्जनतिसके नाशहित,नित्यविचारहिसोइ ।
बिनविचारयह अधमनर,शूलोंका आधार । कारण वह सब विपतिका,तजोमूर्खता भार ।
सार वेद वेदान्त सब,सुकृत ज्ञान प्रवीन । उत्तमयही विचार निधि,दीपकरे तम छीन ।

प्रश्न—ब्रह्मविचार की कर्त्तव्यता व तिसका प्रयोजन कहिये ।

उत्तर—साधनों कर शुद्ध हुई बुद्धि से ब्रह्मविद्या का विचार नीचे कही रीति से मुमुक्षुओं को सदा करना चाहिये । अर्थात् भले, बुरे कर्त्तव्यों का श्रुति के भावों का, सत्य, असत्य का, तत्त्वं पदार्थों का और जीव ब्रह्म की एकता का विचार अधिकारियों को नित्य करना योग्य है ।१।

जगत भरके सर्व संकट व जन्म, मरण आदि के महान् महान भय और संसार के सर्व विघ्न बल्कि बन्ध यह केवल अज्ञान (अविचार) से होते हैं इन सर्व के नाश के लिये अधिकारियों को सदैव ब्रह्म विद्या का विचार करना उचित है ।।२।।

विचार से रहित नीच मनुष्य महान् महान् दुःखों को सहन करता है और इस लोक में सर्व चिंता व शोक भ्रम आदि का कारण अविचार (मूर्खता)है, जो ब्रह्म विचार को त्याग करके और साधन किया करते हैं वह ब्रह्मज्ञान को प्राप्त नहीं हो सकते । किन्तु अधिकारियों के लिए वैराग्य सहित ब्रह्मविचार (अभ्यास) नित्य करना योग्य है ।।३।।

अधिक क्या वर्णन करें कि लौकिक व वैद्यक सर्व कर्त्तव्य विचार करने पर उत्तम फल देते हैं और अनेक प्रकार के सुकृतों साधना व बेद वेदान्त आदि शास्त्रों का यथार्थ सार जानना विचार से हो सकता है । जैसे दीपक की ज्योति से अन्धकार दूर होकर सर्व पदार्थों का ठीक ठीक प्रकाश होता है तैसे ही विचार के करने पर सर्व लौकिक, वैदिकों के कर्त्तव्यों का यथार्थ ज्ञान होकर मुक्ति का मार्ग खुल जाता है ।।४।।

परमात्म मयी मान्या महानंदैकसाधिनी। क्षणमेकं परित्याज्या न विचार चमत्कृतिः॥५
वरं कर्दम भेकत्वंमल कोटकता वरम्। वरमन्ध गुहाहित्वं न नरस्यऽविचारता ॥६
अन्धान्ध मोह मुघनं चिरंदुःखाय केवलम्। कृतंशिक्षाया हृदयंदुर्मतेश्चाऽविचारिणः॥७
सफलतां फलते भुविकर्मणां प्रगटतांकिल गच्छति उत्तमाम्।
स्फुट विचार दशैव विचारिताशमवते भवते च विरोचताम्॥८॥

आत्मदिखावे मानवर,कारणपरमानंद। होइ अलौकिक भासअति, कर बिचारनहिबंद।
कीचड़मैंढ़क बनेभी, मलहिकीट आधीन। सर्पयोनिहो घोरतम, बिन विचारनरहीन।
बिना विचारे अंधतम, घोर यही अज्ञान। केवल दुखके सहन हित,होइ बिचारहि हान।
लोकिक वैदिकहोंसफल,ब्रह्म आत्मकृतज्ञान। हेतुसमाधि भूमिका,वरविचार रुचिमान।

प्रश्न—ब्रह्म विचार करने व त्याग देने पर क्या लाभ व हानि होती है?

उत्तर—जो सज्जन सदा आत्म विचार करता है वह सम्पूर्ण विचारों के शिरोमणि भावों और उत्तम गति को प्राप्त होता है अर्थात् विचार ही परमानन्द के देने वाला है। इसलिये ब्रह्म विचार को कभी नहीं त्यागना चाहिये। जो इस विचार को छोड़कर संसार के कार्यों में सदा लगे रहते हैं वह परलोकआदि में बहुत काल तक महान् महान् कष्टों को भोगते रहते हैं इसलिये प्रकाश रूप इस विचार को कभी त्यागना नहीं चाहिये ॥५॥

कीचड़ में मैंढ़क बनना, बुरे मल में कृमी होना और अन्धेरी जगह में सर्प बनना यह तो भला है परन्तु विचार रहित मनुष्य बहुत निन्दा के योग्य व सर्व अनर्थों का भण्डार व तिरस्कार का पात्र और सर्व अवनति (अधोगति) का भागी होता है ॥६॥

अधिक क्या कहें विचार करने पर ही सर्व कर्त्तव्य सफल होते हैं व ब्रह्म विचार कर ही उच्च भूमिका प्राप्त होती हैं और यही राज योग्य समाधि का कारण है इसलिये सद्गुरु से प्राप्त हुये विचार को सदैव करना सफल (आनन्दकर) होता है ॥७॥

जिस सज्जन का मन थोड़ा समय भी ब्रह्म विचार में लगता है उनको सर्व तीर्थों का, सम्पूर्ण पृथ्वी के दान करने का, अश्वमेघ आदि अनेक यज्ञोंका और सहस्रों सुकृतों का उत्तम फल प्राप्त होता है मानो उसने मुख्य मुख्य देवोंका पूजन व अपने पितरों का उद्धार भी कर लिया है बहुत क्या कहें ब्रह्म विचार करने वाला सज्जन ब्रह्म ज्ञान को यथार्थ पाकर सर्व के पूजने योग्य होता है ॥८॥

दृश्यं ह्यदृश्यतां नीत्वा ब्रह्माकारेणचिंतयेत्। विद्वान्नित्य सुखे तिष्ठेद्धिया चिद्रस पूर्णया ।६
आत्मार्थत्वेनहि प्रेयान् विषयो न स्वतःप्रियः। स्वतएवहि सर्व्वेषामात्मा प्रिय तमो यतः १०
नित्यशुद्ध चिदानन्दःसत्ता मात्रोऽहमव्ययः। नित्यबुद्धविशुद्धैकःसच्चिदानन्दमस्म्यहम् ।११
अनिशं पूजयंत्येताः सर्वाःस्थावर जंगमाः। यथाभिमतदानेन सर्वे ते भूतजातयः ।। १२

जगको मिथ्या जानके, लखु ब्रह्मातम एक। पूरण चेतन नित सभी,सुख विद्वान अनेक ।।६
आत्म अर्थ प्रिय विषय सब,स्वतःवही दुखरूप। लखुब्रह्मातमप्रेमवर,वास्तवसिद्धअनूप १०
निर्मल सदा आनंद नित,इक रस सत्यस्वरूप। एक ज्ञान मैं शुद्ध वपु,चिदानंद सतरूप।। ११
सुख अभीष्ट सब होत हैं,स्थावर जंगम जीव।पूजें हित अपने लिये,आत्म निरंतर सीव।। १२

प्रश्न—जिस विचार का अति विशेष फल है वह वर्णन कीजिये।

उत्तर–दुःख रूप सर्व जगत् के द्रश्य (पदार्थों) को अदृश्यता (झूठा) जान करके आत्मा व ब्रह्म के एक विचार को सर्वज्ञ लिखते हैं तिसके अभ्यास करके नित्य चैतन्यात्मा में विद्वान् स्थित होते हैं इस विचार को ज्ञान भी कहते हैं, यही वेद, वेदान्त का सार सिद्धान्त है ।।६।।

स्त्री, पुत्र, धन, सम्पति और पांचों विषय आत्म के लिये प्रिय (सुखरूप) भासते हैं, स्वतः यह सर्व महान् दुःख रूप अनात्मा हैं जो पदार्थ व जीव स्वात्मा के अनुकूल होता है वह प्रिय और जो आत्मा के प्रतिकूल होता है वह अप्रिय होता है ।।१०।।

सुखस्वरूप आत्मा नित्य शुद्ध चैतन्य आनन्द एक रस (सत्य) है अर्थात् भाव मात्र शुद्ध ज्ञान स्वरूप है। जड़ रूप देह आदि सर्व पदार्थ मैं नहीं, यह आत्मज्ञान कहलाता है ।।११।।

मनुष्यों के समान चौरासी लाख योनियों के सर्व जीवों की भी यही दशा है अर्थात् वह सभी अपने-अपने प्रिय पदार्थों में प्रीतिकर प्रवृत्ति (व्यवहार) करते हैं और दुःखदाई पदार्थों व जीवों से दूर रहते हैं इससे यही स्पष्ट हुआ कि अपना (आत्मा) ही आनन्द स्वरूप है। परन्तु विचार व अविचार का भेद है यानी ज्ञानी विचार दृष्टि से अपने स्वरूप ब्रह्मात्म को आनन्द चैतन्य सत्य मानते हैं और अज्ञानी क्षणिक आनन्द के प्रगट करनेवाले पदार्थों को सुख रूप मान लेते हैं यह भ्रान्ति बंधन रूप है, सुषुप्ति व खाज तथा अपान वायु में बिना विषयों के महान् आनन्द सर्व को होता है। इससे सिद्ध हुआ कि आनन्द अपने भीतर है बाहर विषयों में नहीं ।।१२।।

योऽन्यथा संतमात्मानमन्यथा प्रतिपादयेत् । किं तेन न कृतं पापं चौरेणात्मापहारिणा ।।१३
श्रुति तात्पर्यमखिलमबुद्ध्वा भ्राम्यते जडः। विवेकीत्वखिलं बुद्ध्वातिष्ठत्यानंदवारिधौ।।१४
लब्धत्रैलोकराज्योनभिक्षांनाकांक्षते यथा । एवं लब्ध परानंदं न क्षुद्रानंदं न कांक्षति ।।१५
समाधिसुप्तिमूर्छासुविज्ञानस्यलयेसति । नित्यानंदस्वरूपेऽस्मिञ्छोकोल्पोऽपिनवीक्ष्यते।।१६

अस्ति भाति प्रिय आत्मा, अन्य रीति प्रतिपाद । आतम घाती पाप सब, किये चोर परमाद ।
उत्तम वेद रहस्यको, नहिं जानै नर भ्रांत । ज्ञानी सम्यक् जानके, सुक्ख सिंधु हो शांत ।
लोक तीनका राज्यले, भिक्ष याच नहि कोइ । परमानंदहि पायकर, सुक्खतुच्छ कब जोइ ।
ध्यान सुषुप्ती मूरछा, बुद्धि आदि हों लीन । ब्रह्मानंद स्वरूप गत, रंच नहीं दुख चीन ।

प्रश्न—शास्त्रों के भावों से उलटा मान लेने पर क्या हानि होती है ।

उत्तर—सत्य चैतन्य आनंद स्वरूप आत्मा (ब्रह्म) को कर्त्ता, भोक्ता अर्थात् स्थूल व सूक्ष्म देह व उनके धर्मों में मिला हुआ जो आत्मा को कहता व जानता है उस अज्ञानी मनुष्य ने सम्पूर्ण पाप कर लिये, वेदान्त में उसको आत्म चौर, घाती लिखा है ।।१३।।

अनेक जीव अपने-अपने अभीष्ठ (पूज्य) भिन्न-भिन्न मानते हैं, भेद माननेवाले श्रुति (वेद) के यथार्थ भाव को नहीं जानकर के संसार चक्र में सदा भ्रमते हैं और ब्रह्मवेत्ता (ज्ञानी) वेद के यथार्थ तात्पर्य (भावों) को समझ करके आत्मानन्द स्वरूप में एकता पाता है । जो ब्रह्मात्म सर्व जगत् व जीवों का आधार है उसको नहीं जान करके मनुष्य कस्तूरी वाले मृग के तुल्य संसार रूप बन में भ्रमता-भ्रमता महान् कष्ट पाता है ।।१४।।

जैसे किसी को तीनों लोकों का राज्य प्राप्त होवे तब वह दीनता पूर्वक घर-घर भिक्षा नहीं माँगता तैसे ही जो परमानन्द स्वरूप को अपना आत्मा जानता है वह असत्य जड़ रूप अनात्म पदार्थों को आनन्द रूप नहीं जानता और न उनमें आसक्ति करता है ।।१५।।

सुषुप्ति व हटयोग रूप समाधि में विज्ञान (बुद्धि आदि) के लय होने पर सर्व दुःख व शोक को भूल जाते हैं और राज्ययोग ज्ञान रूप समाधि में एकता पा करके ब्रह्मानन्द (निर्वाण पद) में मग्न रहता है अर्थात् कृत कृत्य होता है ।।१६।।

शास्त्रीय नियम द्वितीय रत्न

उत्तम रहस्य रूप विभास (६)

अनात्मा भोग कालेऽस्यसुखंयावत्प्रयच्छति। तत्सहस्त्रगुणं दुःखं नाश काले प्रयच्छति।१
मन एव मनुष्याणांकारणं बन्ध मोक्षयोः। बन्धाय विषयासक्तं मुक्तयै निर्विषयं स्मृतम्।२
ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते। संगात्संजायते कामःकामात्क्रोधोभिजायते।३
नगच्छतिविनापानंव्याधिरौषधि शब्दत। विनापरोक्षानुभवं ब्रह्म शब्दैर्न मुच्यते।४

भोग कालमें सुक्खजो,रहेविषय आधीन। गुण सहस्रों दुःख लखु,होइ भोग जब क्षीन।
सभी नरोंका जान मन,हेतु बंध अरु मोक्ष। विषयाशक्ती बन्धप्रद, मुक्त विषयमेंदोष।
विषय ध्यानसे प्रीतिहो,संगहि उपजत काम होइ कामसेक्रोध अति,त्यागहि पुरुषअराम।
कियेपान औषधिबिना,दूरहोइ नहि रोग। बिना ज्ञान अपरोक्षके,कभी मुक्तिनहिं होग।

प्रश्न—आत्मानन्द से भूले हुए मनुष्यों की दशा कैसी होती है?

उत्तर—अनात्म रूप पदार्थों (विषयों) के भोग काल में क्षणिक (थोड़ा) सुख प्रतीत होता है जब उनका वियोग होता है तब उससे हजारों गुणा दुःख संसारी (रागी) मनुष्यों को पेलता है ॥१॥

सम्पूर्ण मनुष्यों का अपना-अपना मनही जन्म, मरण रूप बन्ध व आत्मानन्द की प्राप्ति रूप मुक्ति का कारण है। अर्थात् प्रियमाने हुये विषय भोगों में आसक्त हुआ मन बन्ध के और उन विषयों से छूटा हुआ मन मुक्ति के लिये शास्त्रों में लिखा है ईश्वर सृष्टि मनुष्यों के सुख, दुःख का हेतु नहीं ॥२॥

नित्य प्रति विषयों के ध्यान करने पर उनमें दृढ़ आसक्ति संग उत्पन्न होती है संग (राग) से काम, क्रोध आदि प्रबल विकार प्रगट होते हैं। मनुष्यों में जो अधम हैं वह माया के पदार्थों में सदा लिप्त, ज्ञान से रहित हुये, आसुरी (नीच-नीच) योनियों में अप्रमित कष्ट पाते हैं ॥३॥

जैसे औषधि के खाये बिना, उसके नाम कहने से कोई रोग दूर नहीं हो सकता, तैसे साधनों सहित ब्रह्माभ्यास के द्वारा प्रत्यक्ष (दृढ़) ब्रह्मज्ञान के प्राप्त हुये बिना ब्रह्म के नाम सुनने और कहने पर कभी मुक्ति प्राप्त नहीं होती इसलिये अधिकारी सदैव ब्रह्मअभ्यास करता हुआ कैवल्य (शुद्ध) ज्ञान को पाकर कृतकृत्य होता है ॥४॥

लोक वासनया जंतो शास्त्र वासनयापि च। देह वासनया ज्ञानं यथावन्नैव जायते ।।५
नित्यं कर्म परित्यज्यवेदान्तश्रवणंबिना। वर्तमानस्तु सन्यासि पतत्येव न संशयः ।।६
श्रेयान्स्वधर्मोविगुणःपरधर्मात्स्वनुष्ठितात्। स्व धर्मेनिधनं श्रेयःपरधर्मो भया वहः ।।७
न प्रमादादनर्थोऽन्योज्ञानिनःस्वस्वरूपतः। ततो मोहस्ततोऽहंधीस्ततो बंधस्ततो व्यथा ।८

शास्त्र लोक पुनि देहकी,होंय वासना तीन। ज्ञान कभी उपजे नहीं, जीव बंध ही चीन।
नित्य कर्मको त्यागके,नहीं श्रवण वेदांत। भिक्षु सोई पतित लखु,सुक्ख कभी नहि शांत।
होवे विकल स्वधर्म भी,परसे अच्छा जान। मृत्यु भली निज धर्ममें,बुरा धर्म पर मान।
नहीं अनर्थ प्रमादसम,निश्चय कोमल होइ। व्यथा अहंताबन्ध यह,तासम नीच न कोइ।

प्रश्न—संसार की वासनाओं में लिप्तमुमुक्षुओं को ज्ञान होता है वा नहीं?

उत्तर—अनात्म शास्त्रों के पठन पाठन में विशेष रुचिवाले, रजोगुणी लोगों की प्रसन्नता करने में लगे हुए व परमार्थ को भूलकर अच्छे-अच्छे भोग पदार्थों में आसक्तिवाले मनुष्यों को यथार्थ ब्रह्मज्ञान नहीं हो सकता इसलिये सर्व वासना का त्याग करना ही मुक्ति का द्वार है ।।५।।

नित्य, निमित्तिक कर्तव्यों को त्याग करके वेदान्त अर्थ के श्रवण व मनन आदि में चित्त नहीं लगाता हुआ सन्यासी उभय पतित होता है। अर्थात् त्याग इसलिये किया जाता है कि अनात्म सर्व झगड़ों को छोड़ करके केवल ब्रह्मात्म के ऐक्य ज्ञान में अभ्यास किया जावे। पहले महाराजे महान्-महान् ऐश्वर्य को त्याग बन में साग व कन्द, मूल आदि से निर्वाह कर कृतार्थ होते थे अब वह सर्व बातें उलटी दीख पड़ती हैं इसलिये फल भी वैसा ही है ।।६।।

सम्पूर्ण वर्ण व आश्रमियों को अपना-अपना धर्म करना श्रेयकर होता है और दूसरों का धर्म ठीक किया हुआ भी अवनति का कारण होता है अपने धर्म में मृत्यु भी हो तो श्रेष्ठ फल प्रद है और बिराना धर्म यथार्थ सिद्धि किया भी महान् भय (नरक) को देता है ।।७।।

कोमल ज्ञानियों को ब्रह्म स्वरूप के विचार में कभी प्रमाद (भूल) नहीं करना चाहिये अर्थात् प्रमाद मोह आदि सर्व आसुरी का मूल और अहंकार रूप हो करके दृढ़ बन्धन का कारण होता है इसलिये मुमुक्षुओं को सदैव वेदांतार्थ का विचार करना अत्यावश्यक व कल्याण कर है ।।८।।

यदस्ति तन्न जानाति यन्नेहास्ति तदीक्षते । इत्येवमपराधोऽस्य विद्यते भेद दर्शिनः ॥९
वेदाभ्यासात्पुरा तापत्रय मात्रेणशोकिता । पश्चात्वभ्यास विस्मार भंग गर्वश्चशोकिता ॥१०
अधीत्य चतुरोवेदान् धर्मशास्त्राण्यनेकशः । यस्तु ब्रह्म न जानाति दर्वी पाक रसं यथा ॥११
अस्तु बोधोऽपरोक्षोऽत्र महावाक्यत्तथाऽप्यसौ। न दृढ़ःश्रवणादीनामाचार्यैःपुनरीरणात् ॥१२

ब्रह्म सत्य जाने नहीं, मिथ्या को सत पेख। अति अपराधी अज्ञनर, भेद आतमा देख।
अहंकारहि अज्ञानयुत, जन्ममरण की खान। तीन विपर्यय सहित जो, ध्येय वासना जान।
ताप तीन हों पढ़े बिन, सप्त ताप अध्ययन। शोकहि चिंता गर्वहत, बिना ज्ञान दिन रैन।
शास्त्र वेद जो पढ़े सब, नहीं ब्रह्म का ज्ञान। मध्य व्यंजनों करछुली, स्वाद नहीं पहिचान।

प्रश्न—जीव, ब्रह्म की एकता आदि में जिनको भ्रम है उनकी दशा कहिये ?

उत्तर—ब्रह्मस्वरूप आत्मा को सत्य, चैतन्य व आनन्द नहीं जानकर देह आदि संसार को सत्य व सुख रूप समझ लेने पर अनेक प्रकार की तर्क और पक्षपात को वादी किया करते हैं वह अज्ञानी मनुष्य जीव व ईश्वर में सदा भेद मानते व कहते हैं यह उनका अपराध है ।९।

वेद शास्त्र आदि के पढ़ने से पहिले मनुष्यों को अध्यात्म, अधिदैव अधिभूत तीन ताप सताते हैं परन्तु जो वेद, शास्त्रों को पढ़कर के ब्रह्मात्म ज्ञान को प्राप्त नहीं होते उनको पहले कहे तीन ताप तथा नये और चार ताप सदा पीड़ित करते हैं अर्थात् विद्या प्राप्ति का गर्व व विद्या के विस्मरण होने का भय और सभा आदि में गर्व के भंग होने की प्रबल आशंका और अनेक संशय होते हैं, इस लिये ज्ञान की दाता हुई ब्रह्मविद्या निर्दोष व निःसंताप (उत्तम) मानी गई है ॥१०॥

षट अङ्गों युक्त वेद व सर्व शास्त्रों को पढ़ करके भी ब्रह्म ज्ञान प्राप्त न हो तब वह हत भाग ऐसे बंचित (ठगा रहता) है जैसे करछुली सर्व व्यंजनों में नित्य फिरती हुई भी उनके स्वाद को पा नहीं सकती ॥११॥

वेद, वेदान्त के महावाक्यों को श्रवण करने पर अदृढ़ (कोमल) ज्ञान प्राप्त होता है इसलिये सर्वज्ञों ने उस ज्ञान की दृढ़तार्थ मनन, निदिध्यासन आदि की बारम्बार आवृत्ति (अभ्यास) करना लिखा है तभी ब्रह्मज्ञान में संशय विपर्य्य दूर होते हैं ॥१२॥

अज्ञश्चाश्रद्धधानश्च संशयात्माविनश्यति। नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः।१३
हयमेधशतं सहस्राण्यथकुरुते ब्रह्मघातलक्षाणि।परमार्थविन्नपुण्यैर्नचपापैःस्पृश्यते विमलः
यत्फलं लभते मर्त्यःकोटि ब्राह्मण भोजनैः। तत्फलं समाप्नोति ज्ञानिनं यस्तु भोजयेत्।१५
यद्येको ब्रह्म विद्भुंक्ते जगत्तर्पयतेऽखिलम्। तस्माद् ब्रह्मविदेदेयं यद्यस्ति वस्तुकिंचन।१६

श्रद्धा बिन अज्ञाननर,संशय होंय महान। लोक प्रलोकहि नशें सुख,होवे संशय बान।१३
अश्वमेध लक्षों करे,मारे ब्राह्मण कोटि। जाने जब यह ब्रह्म वपु,पुण्य पाप सब छोट।१४
पावें जोई श्रेष्टफल,विप्र कोटि जैंवाय। तिसी फलों को पाय नर,ज्ञानी जनहिं खवाय।१५
वेत्ता हो परब्रह्म का,अन्न जहां वह पाइ। तृप्त जगत संपूर्ण हो,अर्पो सब कुछ भाइ।१६

प्रश्न—ब्रह्मज्ञान में संशय आदि रहने पर क्या २ हानि होती हैं ?

उत्तर–आत्मज्ञान में अश्रद्धा होने से संशय, विपर्य्ययुक्त हुये अज्ञान बना रहता है तब संशय सहित मनुष्य को इसलोक में बहुत कष्ट व दोष होते हैं व उत्तम लोक की प्राप्ति भी असंभव है और स्वरूपानन्द का होना बहुत दूर रहता है ॥१३॥

यथार्थ ब्रह्मज्ञान के प्राप्त होने पर ब्रह्मवेत्ता का अत्यंत अभाव होता है यदि वह राज्य दशा में लाखों अश्वमेध आदि यज्ञों को करे व लक्षों ब्राह्मणों को वध कर डाले तब भी परमार्थ वेत्ता (ज्ञानी) को कुछ पुण्य, पाप स्पर्श नहीं करते यह सर्व अर्थ गीता में विस्तार से लिखा है। और ज्ञानी के देह को काशी आदि महान्-महान् तीर्थों में व चांडाल के घर पर अथवा हाय-हाय करते अन्त हो जाय वह ज्ञान की प्राप्तिकाल में ही संशय (शोक) से रहित हुआ कैवल्य भाव को प्राप्त होता है ॥१४॥

बड़े-बड़े योग्य अधिकारियों को कोटि ब्राह्मणों के विधि पूर्वक भोजन कराने पर जो फल प्राप्त होता है एक ब्रह्मज्ञानी को भोजन आदिकर तृप्त करने पर वही फल प्राप्त होता है ॥१५॥

ब्रह्मवेत्ता जब भोजन आदि सत्कार करके संतुष्ट होता है तब तीनों लोक (सारी सृष्टि) के तृप्त करने का फल मिलता है कारण यह है कि ज्ञान साक्षात् ईश्वर का आत्मा है, भगवान ने लिखा भी है कि ज्ञानी मेरा आत्मा मुझे सब से अधिक प्रिय है। इसलिये यथोचित भोजन आदिकर ज्ञानी को ही संतुष्ट करना चाहिये यह सर्व अर्थ धर्म शास्त्रों में विस्तार से लिखा है ॥१६॥

ययायया भवेत्पुंसां व्युत्पत्तिः प्रत्यगात्मनि। सासैव प्रक्रियेहस्यात्साध्वी सा चानवस्थिता।१७
वाग्वैखरी शब्दझरी शास्त्रव्याख्यान कौशलम्। वैदुष्यं विदुषां तद्वद्भुक्तये न तु मुक्तये।१८
न लोक चित्त ग्रहणे रतस्य, न भोजनाच्छादन तत्परस्य।
न शब्द शास्त्राभिरतस्यमोक्षो, न चाति रम्यावसथ प्रियस्य॥ १९॥
यः शास्त्र विधि मुत्सृज्यवर्तते काम कारतः। न स सिद्धिमवाप्नोति नसुखं नपरां गतिम्।२०

जिस किस प्रक्रिय युक्ति से, ज्ञान ब्रह्म निज होय। यथार्थ सोई साधवी, नहीं और वर कोइ।
विदुष वाक विस्तारयुत, शब्द चातुरी ढेर। उदरहि पोषण हेत यह, मुक्ति लिये नहिं हेर।
लोकों के रंजन विषे, भोजन उत्तम छाद। रहिं मंदिर व्याकरण रति, मोक्ष तिसी की बाद।
शास्त्री विधि को त्याग के, इच्छावश वर्तंत। सुखसिद्धी नहिं परमगति, यह अपेल सिद्धान्त।

प्रश्न—यथार्थ ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होने के लिए उत्तम उपाय कौन हैं?

उत्तर—वेदान्त की जिस किसी प्रक्रिया व युक्ति आदि से मुमुक्षुओं को ब्रह्मात्मा का पूर्ण अनुभव हो जाय सोई शास्त्रों की युक्ति व प्रक्रिया अधिकारियों को श्रेष्ठ माननी चाहिये ॥१७॥

ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के बिना वेद शास्त्रों के पठन, पाठन मात्र से कल्याण नहीं होता किंतु निष्कामता पूर्वक उनके अर्थों को धारण करने पर शास्त्रों की सफलता होती है अर्थात् उन विद्वानों का वाक्य विस्तार व शब्दों की चतुरता और व्याख्या में कुशलता यह सर्व विद्वानता केवल उदरपूर्ति के अर्थ होती है किसी की मुक्ति के लिये नहीं ॥१८॥

मानी लोगों के प्रसन्न करने में अधिक रुचि व उत्तम स्वादिष्ट भोजनों के करने में प्रीति और अनात्म शास्त्रों में विशेष आसक्ति तथा चित्रकारी मन्दिरों में नित्य निवास करना इत्यादि स्वभाव वाले मनुष्यों की मुक्ति होना असम्भव है ॥१९॥

जो मनुष्य शास्त्रों में कही विधि को त्याग करके अपनी इच्छा अनुसार बर्ताव करता है वह मनुष्य सिद्धि व संसार के सुख और परम गति को भी प्राप्त नहीं होता किंतु शास्त्रों से अन्यथा जो कुछ भी बर्ताव किया जाता है वह सर्व पाप व अनर्थों का कारण होता है इसलिये अपना-अपना कल्याण चाहने वाले अधिकारियों को शास्त्रों के लिखे अनुसार लौकिक व वैदिक सर्व कार्यों को करना आनन्द व मुक्तिप्रद होता है ॥२०॥

श्रेष्ठ तत्त्वदर्शक विभास (७)

नासतो विद्यते भावोनाभावोविद्यते सतः। उभयोरपि दृष्टोऽतस्त्वनयोस्तत्त्व दर्शिभिः।१
नाप्रतीतिस्तयोर्बाधः किंतुमिथ्यात्वनिश्चयः।-नो चेत्सुषुप्ति मूर्च्छादौ मुच्येतायत्नतोजनः।२
या निशा सर्वभूतानां तस्यांजाग्रति संयमी। यस्यांजाग्रतिभूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः।३
नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य नचायुक्तस्य भावना। न चाभावयतःशान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्।४

होना नहिं असत्य का,नहीं सत्य का नाश। इन दोनों के नियम का,ज्ञानी हृदय प्रकाश।
सत परमातम काल त्रय,शेष पना यह देख। जगत होइ विध्वंस जब,जीवन्मुक्त अलेख।
निश विद्या सब भूत की,जागे ज्ञानी कोइ जाग अविद्या जीव सब,ज्ञानी रहि तबसोइ।
ध्यान बिना बुद्धिनहीं,बिनचिंतन नहिंभाव। रहित भावनाशांति किम,होतासुक्ख अभाव।

प्रश्न—सत्य व असत्य के निर्णय में क्या-क्या नियम मानने चाहिये।

उत्तर—नाश हो जाने वाले अनात्म देह आदि सर्व जगत् के पदार्थों की सत्यता कभी नहीं हो सकती और भाव (सत्य) स्वरूप ब्रह्मात्मा का कभी अभाव (नाश) नहीं हो सकता इन दोनों की मर्यादा (अवधि) ब्रह्मवेत्ता यथार्थ जानते हैं ॥१॥

विचार द्वारा परमात्मा को सत्य स्वरूप जानना यही ब्रह्म में शेषपना है और मिथ्या निश्चय करके जगत् के सर्व पदार्थों का अत्यंताभाव समझना यही बाध है। जो जगत् की अप्रतीति मुक्ति का साधन माने तब सुषुप्ति में सभी मुक्त होने चाहिये ॥२॥

गुप्त स्वरूप ब्रह्मविद्या सर्व अज्ञानी जीवों ने रात्रि समझी है उसमें संयमी ज्ञानी जागते हैं और जिस अविद्या (अज्ञान) में संसारी लोग जागते हैं वह ब्रह्मवेत्ताओं ने रात्रि जान रक्खी है। अर्थात् ज्ञानी ब्रह्मविद्या में जागते हैं व अज्ञानी अविद्या में व्यवहार करते हैं। दोनों में भेद बहुत है ॥३॥

अभ्यास रूप योग के बिना सात्विकी बुद्धि प्रकट नहीं होती सात्विक बुद्धि के हुए बिना आत्मा भाव (निश्चय) नहीं हो सकता और भावना के बिना शान्ति नहीं और शान्ति के बिना सुख कभी नहीं होता इसलिये वैराग्य व अभ्यास के बिना सन्यास दुःखदाई होता है और अभ्यासरूप योग कर शीघ्र ब्रह्म प्राप्त होता है अर्थात् इंद्रियों के जीते बिना योग पाना कठिन है किंतु मन व सर्व इंद्रियों को जीत करके ब्रह्म पद पाने के योग्य अधिकारी होता है ॥४॥

असंयतात्मना योगोदुष्प्राप इति मेमतिः। वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः।५
यावत्स्यात्स्वस्य संबन्धोऽहंकारेणदुरात्मना। तावन्नलेशमात्रापि मुक्तिवार्ता विलक्षणा।६
सदाविचारयेत्तस्मात्जगज्जीवपरमात्मनः।जीवभाव जगद्भाव बाधे स्वात्मैवशिष्यते।७
ब्रह्मण्यज्ञान नाशाय वृत्ति व्याप्तिरपेक्षिता। स्वयंस्फुरण रूपत्वान्नाभास उपयुज्यते।८

इन्द्रिय मन निग्रह बिना,योग ज्ञान दुःसाध। जीते मन को यत्नकर,मेरा मता अगाध।
दुष्टात्म अहंकार से, होइ जभी सम्बन्ध। तावत्मुक्ती होइ नहिं, रहे सदा नर बन्ध।
जीव ब्रह्म अरु जगत को,नित्य विचारो मीत। जगत् आदि सब बाधके,अद्वैब्रह्म अभीत।
ब्रह्मअबोधहिं नाशहित,वृत्तिव्याप्तिलखियोग। स्वयंप्रकाशहैआत्मा,पिख आभासवियोग।

प्रश्न—हठयोग में यम व विनय कहे हैं उनकी सफलता कैसे ?

उत्तर—चारों अंतःकरण व दशों इन्द्रियों को स्व-स्व विषयों से निग्रह करना वेदांत में लिखा है इसके भीतर यम व नियम स्थित हैं अर्थात् हठयोग व राज्ययोग दोनों की प्राप्ति संयम के बिना नहीं हो सकती परन्तु दोनों के फल का भेद बहुत है ज्ञान से कैवल्य मुक्ति और हठयोग कर सिद्धियां व हृदय की शुद्धि होती है, मुक्ति नहीं ॥५॥

दुष्ट अहंकार व आत्मा का जब तक मिलाप (एकत्व) जानता है तभी तक अज्ञान दूर नहीं होता, बिना ब्रह्मज्ञान के मुक्ति नहीं होती है इसलिये मुमुक्षुओं को चाहिये जो कुछ साधन बन पड़ें उनमें अभिमान न करें वरन् योग, भक्ति व ज्ञान और मुक्ति सब दूर भाग जाते हैं ॥६॥

जीव व जगत् और ब्रह्म का विचार द्वारा भिन्न-भिन्न स्वरूप जानना चाहिये उस विचार (अभ्यास) करके जीवपने के दूर होने पर शेष अद्वैत आत्म ब्रह्म निश्चय होता है ॥७॥

ब्रह्म में जो अज्ञान कल्पित है उसके दूर करने के लिये वेद, वेदान्त में वृत्ति व्याप्ति मानी है अर्थात् विचार (ज्ञान) वृत्ति आवर्ण को नाश करती है ब्रह्मात्म स्वयं प्रकाश है और जड़ पदार्थों के ज्ञान में वृत्ति आवर्ण को दूर करती है चिदाभास जड़ पदार्थों को जानता है इसको फल व्याप्ति कहते हैं फल नाम चिदाभास का है। यही निश्चय हुआ कि ब्रह्म वृत्ति का विषय नहीं जो ऐसा न माने तब वृत्ति स्वयं प्रकाश और ब्रह्म पर प्रकाश सिद्ध होगा यह वेदान्त से विरुद्ध है ॥८॥

आदावंतेच मध्ये च यत्स्वरूपं न संत्यजेत्। सत्यं तत्तादृशं प्रोक्तमतोऽन्यत्तादृशं नहि ।९
वैराग्यस्य फलंबोधो बोधस्योपरति फलम्। स्वानन्दानुभवाच्छान्तिरेषैवोपरतः फलम्।१०।
मुक्ताभिमानी मुक्तोहि बद्धो बद्धाभिमान्यपि।किं वंदतीह सत्येयंयामतिःसागतिर्भवेत्।११
अंतर्मुखाऽहमित्येषा वृत्तिःकर्त्तारमुल्लिखेत्।बहिर्मुखेदमित्येषा बाह्यंवस्त्विदमुल्लिखेत्।१२।

आदि अन्त पुनि मध्यमें,स्वरूपत्यागे नाहि।सत्यतिसीको भाखिये,विपरीतहि सत काहि।
वैरागहि फल बोधदृढ़,ज्ञान फलहि उपराम। हो अनुभव आनंदका,फल उपरति अभिराम
मुक्ती निश्चय होइ जिस,मोक्षरूप तिस जान। कर्त्ता मुक्ता जान बध,वेद लोक पहिचान।
अंतर मुखहो अहंवृति, लखु ब्रह्मातम नीत। अहं होइ जो वाह्यमुख, होवे बंध प्रतीत

प्रश्न—सत्य स्वरूप आत्मा और मिथ्या जगत् का ठीक-ठीक विचार बताइये।

उत्तर—जो आदि व अन्त और मध्य तीनों कालों और तीनों अवस्थाओं में अपने स्वरूप को नहीं त्यागे किंतु एक रस हो, यानी साक्षी स्वरूप सर्वदा प्रकाशमान रहे वह सत्य है और जो केवल भ्रांति काल में प्रतीत हो और ज्ञान होने पर नहीं रहता यानी भिन्न-भिन्न अवस्था व काल में और का और होता है ऐसा संसार है अर्थात् व्यभिचारी व नाशवान और उलट, पलट होने वाले सर्व अनात्म पदार्थ मिथ्या हैं जैसे स्वप्न जगत् के पदार्थ ॥९॥

इन दोनों का दृढ़ निश्चय (ज्ञान) वैराग्य से प्राप्त होता है उस ज्ञान का फल उपरति (प्राप्त हुए का त्याग) है अर्थात् जब तक विचार (ज्ञान) की विस्मृति नहीं होती तब तक वाह्य प्रवृति नहीं हो सकती और त्याग का यथार्थ फल स्वरूप आनंद की प्रगटता है यानी निष्काम विद्वानों को ब्रह्मा जी से अधिक आनंद श्रुति में लिखा है ॥१०॥

वेदान्त की युक्तियों के विचार द्वारा ब्रह्मज्ञान हो करके मुक्ति का अभिमान (हृदय में दृढ़ निश्चय) होता है वही मुक्ति है और जिसको स्वात्मा में बन्ध प्रतीत होता है वह बंधा हुआ है। "यथा मति तथा गति" यह बात लोक व शास्त्रों में प्रसिद्ध है ॥११॥

ब्रह्मविद्या के विचार द्वारा मन जब अन्तर्मुख (स्वरूप का निश्चय) होता है तभी विद्वान ब्रह्मात्मा को यथार्थ जानता है। और जो अज्ञानी अविचार रूप वाह्यमुख्यता (भेद दृष्टि) सहित है उसको संसार सत्य भासता है वह अपने को परिच्छिन्न जानता है ज्ञानी अज्ञानी का निश्चय में बहुत भेद है ॥१२॥

बहिर्दृष्टावपेतायामंतर्दृष्ट्या यदीक्ष्यते। निगूढं जीव चैतन्यं तद्ब्रह्मेति प्रपश्यति। १३
त्रिषुधामसु यद्भोग्यं भोक्ता भोगश्चं यद्भवेत। तेभ्यो विलक्षणःसाक्षी चिन्मात्रोहं सदाशिवः१४
चिदिहास्तीह चिन्मात्रं सर्वं चिन्मयेव तत्। चित्त्वं चिदहमेतेच लोकाश्चिदितिसंग्रह।१५
यस्तु सर्व्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति। सर्व्व भूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते।।१६

बाह्यदृष्टिकोत्यागके, अन्तर दृष्टिहिबोध। गुप्तहि चेतन रूपलखु, जीव ब्रह्म ले शोध।
तीन अवस्था त्रिपुटियह, इनसबका कर बाध। साक्षी चेतन एक लखु, ब्रह्म रूप आराध।
पूरण चेतन लोक त्रय, समस्त चेतन रूप। मैं तू सबही बोध वपु, जगचिद एक स्वरूप।
लखे भूत सब आत्मा, सो सम्यक् विद्वान। नाशें संशय शोक सब, अद्वैदृष्टि प्रधान।

प्रश्न—अन्तर्मुखता व बाह्यमुखता का स्वरूप व फल क्या है ?

उत्तर—यह देह आदि मैं हूँ और स्त्री पुत्र आदि मेरे हैं यह बहुमूर्खता कहलाती है, सो जीव को बन्धन करती है इस बाहर दृष्टि (अविचार) को त्याग करके विद्वान् पूर्ण ज्ञान (चैतन्य) के अभ्यास से मुक्ति भागी होता है ।।१३।।

जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति व बाल्य, युवा वृद्ध अथवा सात्विक, राजस तामस इत्यादि अवस्थाओं और कर्ता, करण, कर्म व भोक्ता भोग, भोग्य इत्यादि चतुर्दश त्रुपुटियों से विलक्षण इनको एकरस जाननेवाला साक्षी (चैतन्य) मात्र जो ब्रह्म है वह मैं हूँ यह सर्व विद्वानों का निश्चय है।।१४।।

इस लोक में चैतन्य व्यापक (पूर्ण) है तीनों लोक (सर्व सृष्टि) भी चैतन्य मात्र हैं व तुम भी चैतन्य रूप हो और मैं भी केवल चैतन्य स्वरूप हूँ इस प्रकार सर्व को एक ब्रह्म निश्चय करना वेद, वेदान्त का मुख्य सिद्धांत है ।।१५।।

सर्व भूत, भौतिक को मिथ्या निश्चय करके जो केवल ब्रह्मात्म को अपना वास्तव (असली) स्वरूप जानता है और सर्वभूतों में अद्वैत (एक) आत्म को व्यापक जानता है वह पुरुष किसी की निन्दा, स्तुति नहीं करता किंतु सर्व भेद दृष्टि को त्याग करके सबको शुद्ध ब्रह्म निश्चय करता है और व्यवहार काल में सर्व मर्यादा होनी ठीक है अर्थात् विद्वान् की निष्ठा निश्चय एक है परन्तु बर्ताव में कभी एकता नहीं हो सकती और करनी भी नहीं चाहिये ।।१६।।

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणाहुतम्। ब्रह्मैव तेन गंतव्यं ब्रह्म कर्म समाधिना।१७
भारोऽविवेकिनःशास्त्रंभारोज्ञानंचरागिणः। अशांतस्यमनोभारोभारोऽनात्मविदोवपुः।१८
आत्मानंचेद्विजानीयादयमस्मीतिपूरुषः। किमिच्छन्कस्यकामायशरीरमनुसञ्ज्वरेत्।१९
यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः। अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम्।२०

अर्पण साकलि अग्निहुत,ब्रह्मप्राप्त फल जान।कार्ककर्म सब ब्रह्म लखु,होइ ब्रह्मका ज्ञान।
शास्त्र निरर्थक ज्ञान बिन, दृढ़रागी खो ज्ञान। उद्वेगी को भार मन, अज्ञ देह हैरान।
हो ब्रह्मातम ज्ञान जिस, द्वैत दृष्टिसब त्याग।किसको चाहे लिये किस,करे देह अनुराग।
बोध गर्व बिन ज्ञान दृढ़,मनन लखे अज्ञान।ज्ञेय लखेनहिं ब्रह्म वित,कहि ज्ञाता अनजान।

प्रश्न–ज्ञान द्वारा सर्व ब्रह्म जानने का मुख्य फल क्या है?

उत्तर–सर्व संसार को मिथ्या (अत्यन्ताभाव) निश्चय करके सबको ब्रह्म जाननेवाला ब्रह्म प्राप्ति के योग्य होता है। अर्थात् अर्पण, साकिल, अग्नि हवन, कर्त्ता, फल इनको जो ब्रह्म निश्चय करता है वह साक्षात् ब्रह्म होता है इसलिये भोजनों के आदि में विद्वान् इसी श्लोक का उच्चारण, विचार करते व कराते हैं ॥१७॥

विचार (ज्ञान) के निश्चय किये बिना शास्त्रों को पढ़ना निष्फल है और मोह सहित रागी मनुष्यों का ब्रह्म ज्ञान केवल कहने मात्र है और नित्य चंचल वृत्तिवालों का मन भार (दुःखदाई) है तथा अज्ञानियों का मनुष्य देह होना निरर्थक है ॥१८॥

जिस पुरुष को वेदान्त व सद्गुरु की कृपा से जगत् के मिथ्या निश्चय पूर्वक यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता है वह किस भोक्ता के लिये किस पदार्थ की इच्छा परिश्रम कर सकता है अर्थात् ज्ञान दृष्टि से सर्व को दुःखप्रद व तुच्छ (असत्य) जानता है ॥१९॥

जिसको ब्रह्मज्ञान का अभिमान नहीं किन्तु ब्रह्म को स्वयं प्रकाश व सर्व धर्मों से अतीत शुद्ध जानता है उसका ज्ञान यथार्थ है जो यह कहता है कि मैंने ब्रह्म को शुद्ध वृत्ति कर जान लिया है उसका ज्ञान मिथ्या है। और ब्रह्म को दृश्य रूप नहीं जानता किंतु सर्व का प्रकाशक मानता है वह यथार्थ ज्ञानी है तथा जो मनुष्य अन्तःकरण को ब्रह्म का ज्ञाता और ब्रह्म को उसका विषय जानता है उससे ज्ञान कोसों दूर है। यह सर्व वेद, वेदान्त का सार, सिद्धांत है ॥२०॥

तुच्छाऽनिर्वचनीयाचवास्तवीचेत्यसौत्रिधा।ज्ञेया मायात्रिभिर्बोधैःश्रौतयौक्तिकलौकिकैः।१
आत्मा नित्योहि सद्रूपो देहोऽनित्योह्यसन्मय।तयोरैक्यं प्रपश्यंति किमज्ञाननतःपरम्।२
विसृजति यदैव भवनं चिन्नाम्निव्योम्नि कालिककाचित्।
परितो वतप्लवते ब्रह्माद्य भिधान फल्गु मंडूकाः ॥३
जरठापिकाचिदसतीसंदयगुणान्परस्यपुरुषस्यसंगंविनैवहसितैःसर्वस्वंहरतिहंतकिंब्रूमः।४

तुच्छ अनिर्वचनीय सत,त्रयविधि माया रूप। ज्ञानी,पंडित,अज्ञनर,जानें तीन स्वरूप।
सत्य आत्म कहि वेदनित,देह असत्य विनाश।तिन दोनोंकी एकता,जान अविद्याराश।
शक्ती माया ईशकी, रचती चौदहि भवन। ब्रह्मा दर्दुर जीव सब,करें सृष्टि में गमन।
वेश्या बुढ़िया तुल्य यह,गुणपर पुरुष दिखाय। संग बिना सरवस्वहर,खेदबहुत हर्षाय।

प्रश्न–जिसकर सर्व ज़गत् प्रतीत होता है उसका स्वरूप कहिये।

उत्तर–सम्पूर्ण संसार का कारण माया है वह तीन दृष्टि से अथवा तीन प्रकार के मनुष्य भिन्न भिन्न से इसका स्वरूप जानते हैं। ब्रह्मवेत्ता (ज्ञानी) इस को तुच्छ (असत्य) व युक्ति में चतुर पंडित अनिर्वचनीय और अविचारी (संसार के) जीव इस माया को सत्य जानते हैं। जो माया कुछ सत्य वस्तु होती तब सर्व को एक रूप से प्रतीत होती। वेद शास्त्रों ने व्यवहार के भेद से इसको प्रकृति, प्रधान और समष्टी अज्ञान रूप वर्णन किया है ॥१

शास्त्रों में लिखा है कि ब्रह्मात्मा सत्य और देह आदि सर्व जगत् असत्य (झूँठा) है इन दोंनों की एकता (मिलाप) जानना यह अज्ञान समुदाय (माया) कहाती है अर्थात् आकाश की नीलता के समान माया असत्य हुई भी महान् विस्तार सहित जगत् रूप हो भासती है ॥२

चित्त (अहंकार) रूप वाली छल रूप माया इन्द्रजाल की वाजी के सदृश ब्रह्माजी से लेकर मैंड़कों तक बड़ी व छोटी छोटी सर्व देहों को रचती है यह अनजानों को महान् आश्चर्य को दिखाती है परन्तु विद्वान् कार्य सहित माया को झूठी मानते हैं ॥३

अनादि माया रूप बुढ़िया वैश्या परपुरुष को तीन गुण रूप नाच को दिखाती हुई संग किये से बिना केवल विलास (हाव भाव) करके जीवात्म रूप पुरुष के शुद्ध ज्ञान रूप सरवस्व को हर (ठक) लेती है अर्थात् माया के वश हुए अपना वास्तव (यथार्थ) रूप नहीं जान पड़ता यह महान् विस्मय है ॥४

सर्वं कार्येषु शक्तत्वान्मायाक्षेपं न सार्हति । दुर्घटस्यैव घटने स्वभावः सर्वं संमतः । ५
अव्यक्त नाम्नी परमेश शक्तिरनाद्यविद्यात्रिगुणात्मिका परा ।
कार्यानुमेया सुधियैव माया यया जगत्सर्वमिदं प्रसूयते ॥६
न ह्यस्त्यविद्या मनसोऽतिरिक्ता मनो ह्यविद्या भव बन्ध हेतुः।
तस्मिन्विनष्टे सकलं विनष्टंविजृम्भितेऽस्मिन्सकलं विजृम्भते ॥७॥

रचना सभी समर्थ लखु,तब निषेध नहिं होइ।दुर्घट घटना रूप तिस,यह सम्मत सबकोइ।
शक्तिईश अव्यक्तवपु,त्रय गुणरूप अनादि ।रचे जगत् इम जानिये,हेतु दृश्य सब आदि ।
चित्त,अविद्या एक वपु,बंध मोक्ष इमि होइ। रच संहारे जगत सब,मनहि अविद्या सोइ।

प्रश्न–जो माया झूठी है तो शास्त्र इसको क्यों वर्णन करते हैं ?

उत्तर–कार्य रूप सम्पूर्ण प्रपंच के रचने से समर्थ्य रूप यह माया व्यवहार काल में निशेद्ध नहीं की जाती कारण यह है कि इंद्रजाल के तुल्य जो जो नहीं बन सके उसको बना दिखाती है इसी लिये शास्त्रों में अघटित घटना इसको वर्णन किया है। जैसे मन्द अन्धकार में रज्जु मध्य झूंठा भासा सर्प महान् भय का कारण होता है रज्जु के यथार्थ ज्ञान हुए के बिना भय नहीं छूट सकता। तैसे ही अज्ञानीं जीवों के हृदय में माया का आडम्बर दृढ़ हो रहा है शास्त्र उसका अनुवाद (कल्पना) करते हुए अन्त में युक्तियों से माया को उड़ा देते हैं तब उसके बनाये हुए (झूंठे) प्रपंच का भी अभाव निश्चय होता है ॥५

ईश्वर की शक्ति अनादि अविद्या (माया) कार्य रूप जगत् के प्रतीत होने से अनुमान करी जाती है उसी झूंठे प्रपंच को बनाया है झूंठ रूप प्रपंच के रचने वाली माया झूंठी मानी जाती है ॥६

श्री शंकराचार्य लिखते हैं कि निश्चय करके जानों मन से भिन्न अविद्या (माया) नहीं है किंतु मन रूप अविद्या स्वप्न सृष्टि के समान जगत् को रचती है अर्थात् मन के उदय हुए जगत् का भासना व स्वप्न में और रूप से जगत् होकर बन जाना तथा सुषुप्ति में मन के लय हुए जगत् का न भासना यह सर्व रचना अविद्या रूप मन के आधीन प्रत्यक्ष होती है इस लिये अज्ञान रूप मनन शक्ति को दूर करना कल्याणप्रद् है यह सर्व वेदान्त शास्त्रों का सिद्धान्त है ॥७

प्रबोधे स्वप्नवत्सर्वं सहमूलं विनश्यति । अनाद्यपीदं नो नित्यं प्रागभाव इव स्फुटम् ।८
मनोदृश्यमिदं द्वैतं यत्किञ्चित् सचराचरम् । मनसो ह्यमनीभावे द्वैतं नैवोपलभ्यते ।९
अचिंत्य रचना रूपं मायैव सकलं जगत् । इति निश्चित्य वस्तुत्वद्वैतं परि शिष्यताम् ।१०
मायाया विविधत्वेन तस्याः कार्येषु खादिषु नामरूपेष्वेनेकत्वं भात्यन्योऽन्यविलक्षणम् ।११

सृष्टि स्वप्न की जानकर, होइ समूल अभाव। माय अनादी नहीं नित, लखो प्रागजिम भाव।
चित्त द्वैत हो चराचर, लखु कारण नहिं और । हत आवरण विक्षेप मन, नहीं द्वैत की ठौर।
अचिंत रचना रूप जग, माया रूप अशेष । निश्चय ऐसा होइ जब, ब्रह्म एक लखि शेष।
अनेक माया रूप से, आकाशज संसार । नाना भांति जु भासते, नाम रूह आकार।

प्रश्न—माया व प्रपंच यह अनादि हुऐ झूठे कैसे हो सकते हैं ?

उत्तर—अनादि का अर्थ यह है कि जिसकी कभी आदि (उत्पत्ति) न हो, जैसे घट का प्राग्भाव व जल का प्रवाह अनादि भासते हैं परन्तु नित्य नहीं कहे जाते हैं तैसे कारण, कार्य रूप सर्व दृश्य स्वप्न सृष्टि के तुल्य थोड़े से काल में नया भासता है, परन्तु सत्य नहीं अर्थात् स्वप्न अपने काल में अनादि व विस्तार सहित भासता हुआ भी झूठा है जगत् रूप धर्मी जब झूठा है तो उसके धर्म अनादिपना व विस्तार सत्य कैसे हो सकते हैं ॥८॥

स्वप्न के तुल्य मन का परिणाम जड़, चेतन रूप सर्व प्रपंचमय द्वैत भासता है यह किंचित् भी सत्य नहीं। प्रतीत होने वाले पदार्थों को सत्य नहीं कह सकते जैसे स्वप्न सृष्टि है और एक रस सर्व को जानने वाला साक्षी आत्मा सत्य स्वरूप है। ज्ञान प्राप्ति से माया व जगत् सब असत्य (झूठे) हैं ॥९॥

जगत् का स्वरूप व विस्तार यदि चिंतन में नहीं आ सकता तब भी आकाश की नीलता समान असत्य है अर्थात् जो देखा सुना जाता है वह सर्व झूठा होता है यह सर्व शास्त्रों का सिद्धांत है मरुभूमि में जल व उसका ज्ञान दोनों झूठे हैं ॥१०॥

सोते हुये पुरुष में निद्रा, अविद्या स्वप्न सृष्टि की सब मर्यादा सहित ब्रह्मांड स्पष्ट बना देती है तैसे ही यह अविद्या जीव, ईश्वर व जगत् सम्पूर्ण विस्तार को निराकार व निर्विकार ब्रह्म में बनाती है अर्थात् मन रूप अविद्या स्वप्न सृष्टि के तुल्य झूठा आडम्बर खड़ा कर लेती है यह अर्थ ज्ञान काल में प्रत्यक्ष होता है ॥११॥

नात्मभावेन नानेदं न स्वेनापि कथञ्चन।न पृथङ् नापृथक्किञ्चिदिति तत्त्वविदोविदुः।१२
मायामाय कार्य्यंसर्वं महदादिदेहपर्य्यन्तम्।असदिदमनात्मकत्वं विद्धिमरूरीचिकाकल्पम्
माया मेघो जगन्नीरं वर्षत्वेष यथा तथा।चिदाकाशस्य नोहानिर्न वा लाभइति स्थितिः।१४
शुद्धाऽद्वय ब्रह्म विबोध नाश्या सर्प भ्रमो रज्जु विवेकतो यथा।
रजस्तमःसत्वमिति प्रसिद्धा गुणास्तदीयाः प्रथितैःस्वकार्यैः ॥१५॥

मिथ्या आतम दृष्टि से,स्वतःनहीं सतरूप। भिन्न अभिन्न न कहि सकें,माया केर स्वरूप।
बुद्धी से सब देह लग,माया कारज जान। कारज कारण असत सब,बालू मरू समान।
माया मेघहि वर्षती, सब जग बुंदहि वारि। ब्रह्मात्मकी नहीं चति, कहते वेद पुकार।
शुद्ध ब्रह्म इक ज्ञान से, होती माया नाश। गुण तीनों अज्ञानमय, भ्रांती होइ विनाश।

प्रश्न–किस युक्ति से माया प्रपंच को मिथ्या जान सकते हैं सो कहो।

उत्तर–आतम (वास्तव) दृष्टि से माया व उसका कार्य प्रपंच तीनों कालों में सत्य नहीं 'शुक्ति रूप्यवत्' और अपने स्वरूप से भी झूठे हैं अर्थात् विचार दृष्टि से माया व प्रपंच सत्य नहीं केवल भ्रम काल में भासते हैं जो-जो भ्रम दशा में भासे वह अवश्य झूठा होता है ॥१२॥

माया व उसका रचा हुआ जगत् अर्थात् महतत्त्व से लेकर देह, जगत् अनात्म है सत्य नहीं, जैसे मरुभूमि में मृगोंकर कल्पित जलाशय झूठा भ्रमाने का कारण है, तैसे यह सर्व आडम्बर मनरूप मृग की कल्पना है, सत्य नहीं ॥१३॥

मायारूप घनश्याम बादल हैं उससे जहाँ तहाँ जगत् रूप वर्षा होती है परन्तु आकाश का तिस कर कुछ हानि, लाभ नहीं हो सकता तैसे माया का रचा हुआ कल्पित जगत् चिदाकाश की कुछ अवनति नहीं कर सकता। माया व जगत् की सत्ता ब्रह्म में कल्पित है ॥१४॥

उस माया के सत्व, रज, तम तीन गुण हैं वह विचित्र रूप व्यवहारों को दिखाते हैं अर्थात् भूले हुये पदार्थों की स्मृति (ज्ञान) सात्विक काल में होती है जब मन चंचल होने से विशेष प्रवृत्ति होती है तब रजोगुण की प्रवृति समझो और निद्रा आलस्य आदि के होने पर तमोगुणों का प्रवर्तन हुआ जानो परन्तु जब अद्वैत निर्विकार ब्रह्म को निश्चय किया जावे तब तीनों गुणों सहित सर्व का अत्यन्ताभाव निश्चय होता है, यह मुक्ति दशा है ॥१५॥

अज्ञान व ज्ञान विभास (९)

अज्ञानोपहतो बाल्ये यौवने वनिता हृतः। शेषे कलत्र चिन्तार्तः किं करोति नराधमः।१
इच्छा द्वेष समुत्थेन द्वंद्व मोहेन जन्तवः। धरा विवर मग्नानां कीटानां समतां गताः।२
अद्वितीयं ब्रह्मतत्त्वं न जानन्तियदा तदा।भ्रांता एवाखिलास्तेषां कमुक्ति क्वेहवासुखम्।३
कर्तृत्वाद्यहंकार भावनां रूढो मूढः। मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इहनानेव पश्यति।४
अति वर्णाश्रमं रूपंसच्चिदानन्दलक्षणम्।यो नजानाति सोऽविद्वान्कदा मुक्तो भविष्यति।५

बालदशा अज्ञानयुत,युवा नारि में प्रीति।शोक जरा से चिंतबहु,होइ मुक्ति किस रीति।
मोहित इच्छा द्वेष से,द्वंद्वहि ग्रसा अपार।वह नर अधमहि कीटसम कहें वेद धिक्कार।
ब्रह्मतत्त्व अद्वैत निज,नहिं जानें वह भ्रान्त।ऐसे पापीनीच नर,मोक्ष सुक्ख नहिं शांत।
लखे भेद इक ब्रह्म में, कर्तृ बुद्धि को धार। हंकारहि युत देह में,जन्म मृत्यु बहु बार।
सत चेतन आनन्द घन,आश्रम वरणअतीत।नहिंजाने जो ब्रह्मको,मोक्ष होइ कब मीत।

प्रश्न–अज्ञान से मनुष्यों की क्या हानि होती है वह कहिये।

उत्तर–अज्ञान द्वारा बाल्यावस्था में चंचलता, भय आदि से युवा में काम, गर्व आदि विकारोंकर और वृद्धपन में रोग, चिंता, मोह आदि कर संयुक्त मनुष्य परमार्थ को प्रमाद वश नहीं साधकर अधोगति को प्राप्त होता है ॥१

अज्ञानी मनुष्य राग, द्वेष, शोक, चिंता और तीनों तापोंकर पीड़ित हुआ कीटों की गति को पाता है ॥२

अज्ञान वश अपने स्वरूप ब्रह्मतत्व को जब तक नहीं जानता तब लग उस भ्रांति मनुष्य को संसार सुख व मोक्ष प्राप्त नहीं होते किंतु जन्म, मृत्यु के अपार दुःखों से नित्य व्याकुल रहता है ॥३

मैं कर्त्ता व भोक्ता हूँ ऐसे देह आदि में वृथा अहंकार करता हुआ अज्ञानी मनुष्य पशु व पक्षियों के तुल्य है। दोनों लोकों में कल्याण चाहने वाले मनुष्य साधनों सहित आत्म तत्व को सद्गुरु से सुनते हुए वैराग्य और अभ्यास द्वारा तत्त्व ज्ञान को प्राप्त होकर कृतकृत्य होवें ॥४

वर्ण व आश्रमों से अतीत शुद्ध सच्चिदानन्द स्वरूप को जो मनुष्य साधनों द्वारा यथार्थ नहीं जानता उसकी कल्पों तक मुक्ति नहीं होती, वह नर कूप घट माला की नाईं ऊँच, नीच योनियों में भ्रमता रहता है ॥५

अथयोऽन्यां देवतामुपास्तेऽन्यो सावन्योऽहमस्मीति न स वेद यथा पशुः॥६
अनुभूतिं बिना मूढो वृथा ब्रह्मणि मोदते।प्रतिबिम्बित शाखाग्र फलस्वादन मोदवत्॥७
कुशला ब्रह्म वार्तायां वृत्ति हीनाःसुरागिणः। तेऽप्यज्ञानतया नूनं पुनरायांति यान्ति च।८
काष्ठ दंडो धृतो येन सर्वाशी ज्ञानवर्जितः। यस्य दुष्कृतां यातिधिक्तं पुरुष कीटकम्॥९
न व्याधिर्न विषं नापत्तथानाधिश्च भूतले।खेदाय स्वशरीरस्थं मौर्ख्यमेकंयथा नृणाम्॥१०

ब्रह्मातम से देव अन, जान करे जो सेव। वही पशू सम जानिये,ज्ञात ब्रह्म नहिं देव।
आतम अनुभव किये बिन,वृथा मूढ़ अह्लाद।जलमें भासित शाखफल,झूठातिसकास्वाद।
ब्रह्मज्ञान से रहित जो,होवें सुर बाचाल। निश्चय खोया दीन अति,गहे जन्म त्रिकाल।
युक्त वासना दण्ड धर, होइ ज्ञान से हीन। सोई पापी कीट सम,धिक्क वेद बहु दीन।
जभी मूढ़ता देह गत,सभी रोग विषजान।सर्व आपतीखेद निधि,जब स्वरूप अज्ञान।

प्रश्न—ब्रह्म से भिन्न देवताओं की भक्ति करने पर क्या गति होती है?

उत्तर—अद्वैत निर्गुण ब्रह्म से अन्य छोटे छोटे देवों की जो भेद उपासना है अर्थात् मैं अन्य हूँ और देवता मेरे से भिन्न हैं वह भेदज्ञान युक्त शास्त्रज्ञ मनुष्य भी बनचरों के तुल्य है उसको उपासना मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकती॥६

ब्रह्म निश्चय किये बिना ब्रह्म के नाम को सुन अज्ञ वृथा आनन्द मानता है कोई तालाब में भासे हुए प्रतिबिंबित वृक्षों के फलों से तृप्त नहीं हो सकता किंतु साधनों द्वारा सांचे ज्ञान को पाकर ही ब्रह्मानन्द प्राप्त होता है॥७

वेदान्त की वार्तालाप में चतुर और आत्मदृष्टि से रहित यदि देवता भी हो तब भी अज्ञानवश जन्म, मृत्यु के चक्र में भ्रमता है अर्थात् अद्वैत ब्रह्मज्ञान के प्राप्त हुए बिना कृतकृत्य कोई नहीं हो सकता॥८

सांसारिक वासना युक्त और वैराग्य, ब्रह्मज्ञान से शून्य मनुष्य केवल काष्ठमय दण्ड को धारण करके अपने को कृतार्थ मानता है वेद भगवान् उस को कोटि धिक्कार देते हैं॥९

मनुष्य के हृदय में स्थित अज्ञानता महान् दुखदाई है, उसके समान न कोई प्रबल रोग, न भारी विष और न कोई आपत्ति है, अर्थात् जब तक स्वरूप का अज्ञान है तब तक अनेक शरीरों को धारण करके जीवों को अमित समय तक महान् महान् कष्ट सहन करने पड़ते हैं॥१०

आपदो या दुरुत्तारा याश्च तुच्छाः कुयोनयः। तास्ता मौर्ख्यात्प्रसूयन्ते खदिरादिव कण्टकाः।११
वरं शराव हस्तस्य चांडालागार वीथिषु। भिक्षार्थमटनं रामनमौर्ख्य हत जीवितम्।१२
वरं घोरान्धकूपेषु कोटरेष्वेव भूरुहाम्। अन्धकीटत्वमेकांते न मौर्ख्यमिति दुःखदम्।१३
ये शठेषु दुरन्तेषु दुष्कृतारम्भ शालिषु। द्विषत्सु मित्र रूपेषु भक्ता वै भोग भोगिषु।१४
ते यान्ति दुर्गमाद् दुर्गं दुःखाद् दुखं भयाद्भयम्। नरकान्नरकं मूढा मोह मन्थरबुद्धयः।१५

कष्ट अनेकहि होंइतिस,नीच योनिमें वास। कांटे होंय खजूर जिम,अज्ञानहि दुखरास।
ग्रहण सकोरा हाथमें, घर भिक्षा चांडाल। मांगे उत्तम जानिये, बुरा अज्ञ का हाल।
अन्धकूप वा खोह तरु निर्जन हो भयभीत। भूमिहि ऐसी कीट भलि,अज्ञ बुरा लखु मीत।
मूढ़ ज्ञान बिन भोग रति, संकट पावे क्रूर। नरक चुरासी दुःख कर,होवे दुबुंधि चूर।
ज्ञानहीनकी दशा जो,मुहि पहि लिखी न जाय।नागशेष नहि कहि सकें,कष्ट नरक बहुपाय।

प्रश्न—अज्ञानता से और क्या क्या अनर्थ मनुष्यों को प्राप्त होते हैं ?

उत्तर—महान् कष्ट साध्य विपत्तियाँ और सम्पूर्ण नीच योनियाँ अज्ञान से इस प्रकार बढ़ती हैं जैसे छुहारे के पेड़ में मूल से लेकर शाखा तक कांटे फैलते हैं ॥११॥

मुनीश्वर वासिष्ट जी श्रीरामजी से कहते हैं कि हे राम जी ! हाथों में मिट्टी का सकोरा धारण करके चांडालों के गृहों में भीख मांग मांग खाना श्रेष्ठ है परन्तु अज्ञान सहित जीना बुरा है ॥१२॥

अति भयंकर व अन्ध मय पुराने कुये या जीर्ण वृक्ष के खोड़ मध्य अथवा उजाड़ स्थानों पर नीच कीट व पतंग होना भला है परन्तु मनुष्य जन्म को प्राप्त होकर अज्ञान से जीना बुरा है ॥१३॥

मूर्ख लोग ब्रह्म ज्ञान को प्राप्त न होकर अपने अपने सुखदाई विषय भोगों में प्रीति करके उनमें ही लगे रहते हैं वह अन्त में महान् महान् संकटों को कल्पों तक सहन करते हैं ॥१४॥

अज्ञानी मनुष्यों की सर्व दुर्दशा लिखी नहीं जाती उनके सब कष्टों को शेष,शार्दा भी ठीक ठीक नहीं वर्णन कर सकते। अर्थात् महान् महान् घोर नरकों की असह्य पीड़ाएँ और चौरासी लाख योनियों के अपार कष्ट अज्ञानी मनुष्यों को सदैव भोगने पड़ते हैं इसलिये मनुष्य देह पाकर अवश्य चेतना चाहिये ॥१५॥

व्याचष्टेयःपठितञ्च शास्त्रं भोगाय शिल्पिवत् ।यततेनत्वनुष्ठाने ज्ञान बन्धु स उच्यते ।१६
वसनाशनमात्रेणतुष्टाःशास्त्रफलानिये।जानन्विज्ञानबन्धूस्तान्विद्याच्छस्त्रार्थशिल्पिनः।१७
प्रवृत्ति लक्षणे धर्मे वर्ततेयः श्रुतोचिते । अदूरवर्ति ज्ञानत्वाज्ज्ञान बन्धुःस उच्युते ।१८
आत्म ज्ञानमनासाद्यज्ञानांतर लवे नये ।संतुष्टाः कष्ट चेष्टंते ते ऽमृताज्ञान बन्धवः।१६
ज्ञानिनैव सदा भाव्यं राम न ज्ञान बंधुना । अज्ञातारंवरं मन्ये न पुनर्ज्ञान बंधुताम्।२०

शास्त्रपढ़ेजो भोग हित,धारणरहित विराग । अर्थसुनावे और को,ज्ञान बन्ध हत भाग।
छादनभोजन हित पढ़े,और पढ़ाये नित्त।शास्त्रहि शिल्पी जानिये,चित्र मध्य ज्यों भित्त।
पूजा हवन प्रवृति बहु,करे कर्म निष्काम।वहिरँग साधन पेखिये, ज्ञान बंधु अभिराम।
ब्रह्मज्ञान नहि पाइ कर,स्वर्ग आदि रुचि भोग।रसास्वादमें फस रहा,ज्ञानबन्ध अतिरोग।
पावो सम्यक्ज्ञानदृढ़,ज्ञान बन्ध नहि होय।बुरा अज्ञसे ज्ञानबन्ध,वेद शास्त्र कहि जोइ।

प्रश्न—अब ज्ञान बन्ध मनुष्यों के लक्षण जानना चाहता हूँ वह कहिये ।

उत्तर—जो मनुष्य शास्त्रों को केवल भोग के लिये अर्थात् संसार के सुखों के वास्ते पढ़ता व व्याख्यान करता है और आप उसके अनुसार नहीं वर्तता उसको ज्ञान बन्ध कहते हैं,वह दृढ़ सांकलों से बन्ध रहा है॥१६॥

वैराग्य से रहित वेदान्त आदि शास्त्रों का पठन, पाठन करने वाला ब्रह्म ज्ञान के कथन करने में शिलपी के समान है अर्थात आजीवका के लिये जो शास्त्रों का अभ्यास व उपदेश आदि करता है वह ज्ञान को पाकर ठीक जकड़ रहा है उसको ज्ञान बन्ध जानना चाहिये ॥१७॥

जो शास्त्रों के विहित (अनुसार) अग्नि होत्र आदि प्रवृत्ति मार्ग में लगा हुआ है ब्रह्म ज्ञान से रहित और साधनों में तत्पर है वह ज्ञान बन्ध है, यद्यपि वह अन्य ज्ञान बन्धों से श्रेष्ठ है परन्तु वेदान्त में चतुर होकर पुनि प्रवृत्ति मार्ग में आसक्त रहने से ज्ञान बन्ध शास्त्रों में लिखा है ॥१८॥

ब्रह्मात्म ज्ञान से रहित लेशानन्द के प्रगट करने वाले स्वर्ग आदि की प्राप्ति के लिये जो यत्न करते हैं वह रसास्वादी ज्ञान बन्ध हैं ॥१६॥

हे राम जी ! कल्याण चाहने वाले मनुष्यों को यथार्थ ब्रह्मज्ञानी बनना उचित है न कि ज्ञान बन्ध बना रहे, मैं अज्ञानी से ज्ञान बन्ध को बहुत बुरा मानता हूँ । अज्ञानी की साधनों द्वारा कभी मुक्ति हो जायगी परन्तु बंध ज्ञानी की मुक्ति नहीं हो सकती है ॥२०॥

आत्मज्ञानं विदुर्ज्ञानं ज्ञानान्यन्यानियानितु। तानिज्ञानावभासानिसारस्यानवबोधनात्। ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति ब्रह्म विदाप्नोतिपरम्।ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति तरतिशोकमात्मवित्। तदेवं विद्वांस इहैवामृता भवंति। तमेव ज्ञात्वा विद्वान् मृत्यु मुखात्प्रमुच्यते ॥२३॥ भिद्यते हृदय ग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः। क्षयिन्ते चास्यकर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ज्ञात्वा तं मृत्युमत्येति नान्यःपन्था विमुक्तये। तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा ब्रह्म संपद्यते ध्रुवम्

ब्रह्म ज्ञान है ज्ञानवर, और सभी अज्ञान। शास्त्र जगत के ज्ञान सब, ज्ञानाभाससमान
ब्रह्म होइ यह ब्रह्मवित, पावें पद निर्वान। ब्रह्मनिष्ठ यह अमर नित,हों संशय सब हानि
परम तेज मय ज्ञान शिव, होता ब्रह्म अपार। तिसी ब्रह्मको जानकर,पावे अमृतसार॥
चिज्जड़ग्रन्थी छुटे तब,सब संशय हों नाश। होइ ध्वंससब कर्म का,लखेब्रह्मअविनाश
तरेमृत्यु ब्रह्म जानके,और मुक्ति नहिं द्वार। जान यही मैं ब्रह्म इक,होवे ब्रह्म अपार।।२५

प्रश्न–अनेक प्रकार केज्ञान फलप्रद हैं एक ब्रह्मज्ञान सफल क्यों कहा?

उत्तर–वेदआदि ने ब्रह्मबोध को ही सर्वोत्तम वर्णन किया है, अष्ट सिद्धियों के अनुभव और शास्त्रों के ज्ञान यह सब ज्ञानाभास अर्थात् व्यवहारों को सिद्ध करते हैं, एक ब्रह्मज्ञान से कैवल्य मुक्ति होती है, और सब ज्ञानों से केवल संसार की उन्नति होती है परमार्थ की नहीं ॥२१॥

ब्रह्मज्ञान को प्राप्त होकर विद्वान् साक्षात् ब्रह्म होता है (१) ब्रह्मवेत्ता ही परमगति को पाता है (२) आत्मज्ञान को पाकर ज्ञानी परमामृत (कैवल्यभाव) को पाता है, (३) ब्रह्मज्ञान से सर्व संशय, शोक नाश होते हैं, यह वेद मन्त्रों का सिद्धान्त है ॥२२॥ तथाच

ब्रह्म को यथार्थ जानने वाला इसी देह में अमृत (मुक्त) होता है, आत्म ब्रह्म को ऐक्य निश्चय करके विद्वान् जन्म मृत्यु को तर के परममोक्ष पाता है ॥२३॥

अपने को चैतन्य स्वरूप जानकर ज्ञानी देह व आत्म के झूठे संग से छूटकर सर्व संशय व विपर्य्य से रहित हुआ कर्मफांस को त्याग के निर्वाणपद को प्राप्त होता है ॥२४॥

अद्वैत ब्रह्म तत्त्व को ठीक ठीक जान करके ज्ञानी मृत्यु से पार होकर परमगति (विदेह मुक्ति) को अन्त में प्राप्त होता है यह सर्व श्रुतियां दृढ़ अभ्यास और वादी के हठ के दूर करने के लिये लिखी गई हैं ॥२५॥

यत्र यत्र मृतो ज्ञानी परमाक्षर वित्सदा।पर ब्रह्मणि लीयते न तस्योत्क्रान्ति रिष्यते ।२६
सर्वसाक्षिणमात्मानं वर्णाश्रम विवर्जितम्।ब्रह्मरूपतया पश्यन्ब्रह्मैव भवति स्वयम्।२७
प्रियेषु स्वेषु सुकृतमप्रियेषु च दुष्कृतम्। विसृज्य ध्यानयोगेन ब्रह्म प्येति सनातनम्।२८
तद्ब्रह्मानंदमद्वंद्वं निर्गुणंसत्यचिद्घनम्। बिदित्वा स्वात्मनो रूपंनबिभेति कुतश्चन।२९
वासनांसंपरित्यज्यमपि चिन्मात्र विग्रहे। यस्तिष्ठतिगतस्नेहःसोऽहसच्चित्सुखात्मकः।३०

ज्ञानी जहितहि देह तज,होइ ब्रह्म में लीन। प्राण नहीं जावें कहीं, नहीं मृत्यु आधीन।
साक्षी आतम ब्रह्म सब,आश्रम वरणअतीत। ब्रह्मरूपसबजानइव, होइ ब्रह्म वहमीत।
सुक्ख दुःख का हेतु जो, पुण्य पाप दोबाध। ब्रह्म ध्यान से मुक्तहो, नित्य ब्रह्म ले साध।
निर्गुण ब्रह्मानंद सत,द्वंद्व रहित चिद्रूप। आत्मरूप हो ज्ञात जब, निर्भय होइ अनूप।
ध्येय वासनात्यागकर,बोधमात्र हो आप। जान ब्रह्म इमि रागतज,चिदानन्द है व्याप।

प्रश्न–ज्ञानी के देहांत होनेपर उसकी क्या दशा होती है वह कहिये।

उत्तर–विद्वान् जहाँ कहीं प्राणों को त्यागे उसकी प्राण कला लोकांतर अर्थात् किसी और देह को प्राप्त नहीं होती किंतु अपने आधार ब्रह्म में लय होती है। यानि ब्रह्मवेत्ता अद्वैत ब्रह्म में अभेद (एकता) रूप विदेह मुक्ति पाता है ॥२६॥

वर्णाश्रम से परे औरसर्व के साक्षी आत्मा को ब्रह्मस्वरूप निश्चय करके विद्वान् साक्षात् ब्रह्म होता है। अर्थात् ब्रह्म चैतन्य को अपना आप जानता है ॥२७॥

अपने प्यारे पुत्र, स्त्री व धन आदि सम्पूर्ण पदार्थों और अप्रिय शत्रु सर्प, सिंह आदि जीवों की प्राप्ति का कारण सर्व कर्मों को बाध (झूठे) जान कर ब्रह्म अभ्यास द्वारा विद्वान् ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है ॥२८॥

मान व अपमान आदि से रहित व तीनों गुणों से परे और सर्व काल से अतीत एक रस चैतन्य को निश्चय करके ज्ञानी अभय ब्रह्म को अपना स्वरूप जानता है, ऊपर कहे सर्व शब्दों से ब्रह्मज्ञान का स्वरूप दिखाया है ॥२९॥

कोमल(अदृढ़)ज्ञान वाले जिज्ञासुओं को चाहिये कि संशय, विपर्य्यरूप मूल (ध्येय) वासनाओं को त्याग करके केवल चैतन्य स्वरूप में स्थित होवें अर्थात् जगत में सत्यता व सुखबुद्धि को त्याग कर राग, द्वेष को छोड़ सच्चिदानंद ब्रह्म को अपना स्वरूप समझें यह दृढ़ ज्ञान ही मुक्ति का द्वार (कारण) है ॥३०॥

दृश्य बन्ध, मोक्ष विभास (१०)

प्रपञ्चो यदि विद्येत निवर्त्तेत् न संशयः। माया मात्रमिदं द्वैतमद्वैतं परमार्थतः।१
स्वप्ने माये यथा दृष्टेगन्धर्व नगरं यथा। तथा विश्वमिदं दृष्टं वेदांतेषु विचक्षणैः।२
निस्तत्वं व्यवहारर्हमनृतं बाल यक्षवत्। बालो यक्षं प्रकल्प्यास्माद्बिभेति व्य।घ्रतो यथा।३
घट शराव इत्यादि विकाराणां मृदः पृथक्। तत्त्वं नाप्ति प्रतीते तु नामरूपे प्रकल्पिते।४
ईक्षणादि प्रवेशान्ता सृष्टिरीशेनकल्पिता।जाग्रदादि विमोक्षान्तःसंसारोजीवकल्पितः।५

प्रपंच होवे सत्य कुछ,तिसका होइ विनाश। मिथ्याजानों द्वैत सब,ब्रह्म एक अविनाश।
स्वप्न अविद्या देख जिम,गन्धर्वहि पुर जान।विज्ञ जानते विश्व इमि,वेदान्ती विद्वान्।
असत योग्यव्यवहार जग,बालक यक्षसमान।करें बालभय सिंह वत,जगतझूठ सब जान।
बासन हैं सब मृत्तिका,मिट्टी भिन्न अभाव।कल्पित भासेंनाम वपु,असत भास यह भाव।
करि इच्छा आवेश लग,मिथ्याईश अरोप।जाग्रत मुक्ती अंत जग,जीव सृष्टि कर लोप।

प्रश्न—बन्ध व मोक्ष रूप दृश्य कल्पित कैसे है यह वर्णन करिये।

उत्तर—बन्ध (प्रपंच) कुछ सत्य होवे तब इसकी निवृति रूप मुक्ति को सत्य मानें। नाना भेद व अद्वैत (एकता) वास्तव से यह सर्व माया स्वरूप होने पर मिथ्या हैं अर्थात् परमार्थ दृष्टि से इनका अत्यन्ताभाव है।'१

जैसे अविद्या रचित स्वप्न सृष्टि व नेत्र दोष से आकाश में भासे हुए गन्धर्वनगर झूठे हैं तैसे जाग्रत को विद्वान् असत्य जानते हैं।।२

भय को प्राप्त हुए बालकों का भूत जिस प्रकार कल्पित है और जैसे अन्धकार में कोई डरपोक मनुष्य चोर व सिंह को जान करके भ्रांति वश महान् भय और दुखों को पाता है तैसे यह संसार भी केवल मन का भ्रम है, इसमें सार कुछ भी नहीं।।३

जैसे घड़ा व सकोरा आदि सर्व बासन केवल मृतका मात्र हैं तैसे ही इस जगत् के सर्व नाम, रूप व्यवहार परमतत्त्व से भिन्न सत्य नहीं हैं।।४

अधिक क्या वर्णन किया जाय ईश्वर में होने वाली जगत् रचना की इच्छा व जीवों में प्रवेश, और अहंता, ममता व राग द्वेष रूप अनेक व्यवहार जीवकर कल्पे हुए हैं। बन्ध व मोक्ष आदि सम्पूर्ण सृष्टि व्यवहारिक है, सत्य नहीं। यह सर्व वेद वेदान्त का अटल सिद्धान्त है।।५

उपदेशादयं वादो ज्ञाते द्वैतं न विद्यते। द्वितीय कारणाभावादुत्पन्नमिदं जगत् ॥६
दृश्य रूपं चदृग्रूपं सर्वं शश विषाणवत्॥इदं प्रपंचं नास्त्येव नोत्पन्नं नो स्थितं जगत् ॥७
चित्तं प्रपंचमित्याहुर्नास्ति नास्त्येवसर्वदा॥माया कार्यादिकं नास्ति मायानास्ति भयंनहि॥८
मृगतृष्णा जलं पीत्वा तृप्तश्चेद मिदं जगत्। गन्धर्व नगरे सत्ये जगद्भवति सर्वदा। ९
अतोऽन्यदार्तम् नतु तद्वितीय मस्ति॥नात्र काचनभिदास्ति नैव तत्र काचन भिदास्ति।१०

कथन सभी उपदेश लग, ज्ञान हुए नहिं सत्त॥कारण दूसर है नहीं, जग नहिं हो उत्पत्त।६
द्रष्टादृश्य प्रपञ्च सब, तुल्य शृङ्ग शश होय। उदय हुआ नहिं जगत यह, नहीं कहीं थिर होइ॥
चित्तरूप संसार सब, कहते यही मुनीश॥माया कारज झूठ जग, नहिं भय बिस्वे बीस।८
मृग तृष्णा जल पान कर, कभी तृप्त नहिं होय॥नहीं सत्य गन्धर्व पुर, सत्य नहीं जग सोइ॥
भिन्न ब्रह्म से जगत नहिं, कहाँ द्वैतका लेश। भेद नहीं इस लोक में, नहीं सत्य लोकेश।

प्रश्न—सब शास्त्र जगत की उत्पत्ति और स्थिति कहते हैं झूठी यह कैसे है।

उत्तर—वेदान्त आदि शास्त्रों ने जगत का आरोप किया है सो उपदेश काल तक है ब्रह्म ज्ञान होने के पीछे द्वैत रूप जगत् कुछ सत्य नहीं, अर्थात् नाम रूप के अभाव होने से जगत् कल्पना जिज्ञासुओं को बोध के लिये कही वास्तविक नहीं ॥६॥

सम्पूर्ण संसार (दृश्य) और उसको देखने वाला दृष्टा यह शशे (खरहे) के सीगों के मात्र है सत्य नहीं, अर्थात सर्व जगत वास्तव से न उत्पन्न हुआ, न स्थित है और न नाश होवेगा, किन्तु सर्व जगत्भ्रम मनो मात्र है ॥७॥

चित्र (अहंकार) कर रचे जगत् को विद्वान् झूँठा कहते हैं इसलिये कुछ बना नहीं जिसका कारण ही माया (छल) है तब उस कर बने हुये जगत् का भय कैसे हो सकता है ॥८॥

मृगों कर कल्पना किया हुआ जो मारवाड़ के तप्त रेतेमें जल (पोखरा) है उस जल को पीकर कोई जीव तृप्त (शांत) नहीं होता, घाम (धूप रूप) निमित्त से दृष्टि दोष कर भासा हुआ जो गन्धर्व नगर है वह सत्य हो जावे तब जगत् को भी सत्य मानें अर्थात् भ्रांति से प्रतीत हुआ मिथ्या प्रपंच सत्य नहीं हो सकता ॥९॥

वेद भगवान् वर्णन करते हैं कि ब्रह्मात्मा से भिन्न जगत् भ्रान्ति मात्र (झूठा) है इसमे सत्यता कुछ नहीं है ॥१०॥

सव विकार जातं माया मात्रम् नान्य किंचन मिषत।
नास्ति द्वैतं कुतो मृत्यु, सर्वत्र न ह्यस्ति द्वैत सिद्धि ॥११॥
नास्ति नास्ति जगत् सव गुरु शिष्यादिकं नहि।सच्चिदानन्द मात्रोऽहमनुत्पन्न मिदं जगत्१२
देहादीनात्मत्वेनाभि मन्यते सोऽभिमान। आत्मनो बन्धः तन्निवृत्ति मोक्षः ॥१३॥
देव मनुष्याद्यपासना काम संकल्पो बन्धः। कर्तृत्वाद्यहङ्कार संकल्पो बन्धः ॥१४॥
अणिमाद्यष्टैश्वर्याशा सिद्ध संकल्पो बन्धः। यमाद्यष्टाङ्ग योग संकल्पो बन्धः ॥१५॥

माया रूप विकार यह,सर्व लखो अद्वैत। द्वैत नहीं पुनि मृत्यु कब,अन्य नहीं कुछ द्वैत।
गुरुशिष्य पुन दृश्य सब,हुए नहीं त्रय काल।एक सच्चिदानन्द वपु, कूट तुल्य नहिं चाल।
देह अनात्म आदि में,दृढ़ होता अभिमान। प्राणी बन्धन इसी से, मुक्त होइ तिस हान।
देव मनुष्य उपासना,इसकर बन्धन होइ। मैं कर्त्ता संकल्प दृढ़, मुक्ति कभी नहिं सोइ।
ऋद्धि सिद्धि संकल्प हो,यह बन्धन दृढ़जाल। करे वासना योग हठ,होवे नहीं निहाल।

प्रश्न–जीव, ईश्वर व जगत् का भेद सत्य है, आप इसको क्यों नहीं मानते।

उत्तर–भेद दृष्टि को अनेक वेद के मन्त्र निषेध करते हैं यानी स्वप्न सृष्टि के तुल्य ब्रह्म से भिन्न सर्व जगत् का भेद असत्य है अर्थात् द्वैत रूप विश्व तीनों कालों में सत्य नहीं, यहाँ भी कुछ भेद सत्य नहीं और परलोक में भी किंचित् भेद वास्तव से सत्य नहीं किंतु यह सर्व माया जाल (मिथ्या) आडम्बर है ॥११॥

बहुत कथन से क्या प्रयोजन है यह मन व वाणी का विषय सम्पूर्ण जगत् और भूत, वर्तमान, भविष्य यह तीन काल सत्य नहीं बल्कि गुरु, शिष्य व बन्ध मोक्ष भी यथार्थ (वास्तव) दृष्टि से सत्य नहीं किंतु केवल शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म है ॥१२॥

देह आदि में अभिमान करना बन्ध है और विचार द्वारा अल्प देशी अहंकार का जब त्याग किया तभी मोक्ष है ॥१३॥

भेद बुद्धि से किसी अन्य देवता की उपासना करने का जो कर्त्तव्य है सो बन्धन है और उस भेद भावना की निवृत्ति मुक्ति है॥१४॥

अणिमा आदि अष्ट सिद्धियों के पाने की जो दृढ़ भावना है यही बन्धन है अर्थात् सिद्धियों के पाने व भोगनेवाला कर्त्ता भोक्ता जब अपने को मानता है तभी तक बन्ध है इसके त्यागने से मुक्त स्वरूप है अर्थात् मान लेने को बन्ध जानो और जगत् का अभाव निश्चय करना मोक्षपद है यही सर्व वेदों का सार है ॥१५॥

स्वसंकल्प वशाद्बद्धो निःसंकल्पाद्विमुच्यते। द्रष्टा दृश्य वशाद्बद्धो दृश्याभावे विमुच्यते॥१६
ममेति बध्यते जन्तुर्न ममेति विमुच्यते। ममत्वेन भवेज्जीवो निर्ममत्वेन केवलः॥१७
भोगेच्छा मात्रकं बन्धस्तत्यागोमोक्ष उच्युते।चिच्चैत्य कलना बन्धस्तन्मुक्तिर्मुक्तिरुच्यते१८
अनास्थैव हि निर्वाणं दुःखमास्था परिग्रहः।कर्मणा बध्यते जन्तुर्विद्यया च विमुच्यते॥१९
स्वरूपावस्थितिर्मुक्तिस्तद्भ्रंशोऽहंत्व वेदनम्।चित्ते चलति संसारो निश्चले मोक्ष उच्यते२०

बन्धनदृढ़ संकल्प से,होइ मुक्त निरवास। बन्धन दृष्टा दृश्य वश,मुक्ति होइ नहि त्रास॥
ममता बन्धन हेत है, मुक्ती ममता हान। ममता होवे जीव तब, निर्भय ब्रह्म पिछान॥
भोग वासना पुरुष बध,त्यागे मुक्ती द्वार। चित्त चैत्य संसार यह,तज कर मुक्तिअपार॥
होइ मुक्ति लखु तुच्छ जग दुःख प्रतिग्रह राग।कर्मों कर हो जीव बध,मुक्तिज्ञान हो जाग॥
ज्ञात ब्रह्म हो मुक्तब,अहं बुद्धि अज्ञान।जग हो मन के फुरण से,मुक्ति अचलचित जान॥

प्रश्न—कर्त्तव्य बन्धन, उसका त्याग मुक्ति है, इस अर्थ को स्पष्ट कर कहिये।

उत्तर—अनात्म किसी भी पदार्थ का दृढ़ संकल्प (वासना) बन्धन रूप है और उस संकल्प (अभिमान) की निवृत्ति मोक्ष है। अर्थात् दृश्य आदि त्रिपुटि को सत्य जानना बन्धन और झूठी मानना मुक्ति पद है इस भाव को वेदों के अनेक मन्त्र कह रहे हैं॥१६॥

देह, स्त्री, पुत्र व धन आदि में ममता करना बंधन और ममता का त्याग मुक्ति है बल्कि ममता करके जीव बनता है इस ममता के त्यागने पर शुद्ध ब्रह्म होता है॥१७॥

अपने को भोगता जानकर जो भोगने की इच्छा है सो बन्धन है तिस का अभाव मुक्ति पद है अर्थात् बन्ध, मोक्ष आदि सर्व संसार मान लेने पर है वास्तव से बन्ध, मोक्ष आदि का अत्यंताभाव है॥१८॥

जगत् को मिथ्या निश्चय कर लेना निर्वाण पद है और इसको सत्य समझना दृढ़ बंधन है अर्थात् कर्त्तव्य बुद्धि कर जीव बंधा है परन्तु ब्रह्म निश्चय कर मुक्त स्वरूप है॥१९॥

ब्रह्मात्म स्वरूप का यथार्थ ज्ञान मुक्त स्वरूप है और उससे गिरकर जीवत्व व कर्त्तव्य मानना यही बंध है सब वेदों का यही ढंडोरा है॥२०॥

बन्धोहि वासना बद्धो मोक्षःस्याद्वासनाक्षयः।पदार्थ भावनादार्ढ्य बंध इत्यभिधीयते॥२१
तदमार्जन,मात्रं हि महा संसारतां गतम्।तत्प्रमार्जन मात्रं तु मोक्ष इत्यभिधीयते ॥२२
अविद्या काम कर्मादिपाश बन्धविमोचितम्।कःशक्नु याद्विनात्मानं कल्पकोटिशतैरपि॥२३
न योगेन न साङ्ख्येन कर्मणानोन विद्यया।ब्रह्मात्मैकत्व बोधेन मोक्षःसिद्धयति नान्यथा॥२४
वदंतु शास्त्राणि यजंतु देवान् कुर्वन्तु कर्माणि भजन्तु देवताः।
आत्मैक्य बोधेन विनापि,मुक्तिर्नसिध्यति ब्रह्म शतान्तरेऽपि ॥२५॥

बन्धन है ध्यय वासना मुक्ति ब्रह्म हो ध्यान। सत्यबुद्धि जबजगतमें,यह बंधन दृढ़ जान।
मन विपर्य्य संसार युत,शुद्धो कर उद्धार। मुक्ती अन्तर मुखीमन,सभी वेद यह सार।
कर्म अविद्या काम सब,यह दृढ़ बंधन जान।कोटि अनंतो कल्प नहिं,ज्ञानबिना कल्यान।
योग सांख्य नहिं कर्म से, विद्या पढ़े अनेक। ब्रह्मात्मका ज्ञान दृढ़, मुक्ति करे यह एक।
पढ़े पढ़ाये शास्त्र बहु, कर्म देवता पूज। ब्रह्म एक के ज्ञान बिन, मुक्ति नहीं कब हूज॥

प्रश्न—बन्ध, मोक्ष का झगड़ा जब मानने पर है इससे जीव कैसे छूटे ?

उत्तर—बहुत क्या कहें किसी भी अनात्म पदार्थ में ममत्व वासना करने से जीव बंध में पड़ता है विचार करके इनको असत्य समझ कर अपने को अकर्त्ता, अभोक्ता जानने पर जीव मोक्ष पाता है ॥२१॥

चित्त की शुद्धि न होने पर जीव वासना जाल में बंध रहा है और विचार कर मन में निर्मल ज्ञान होने पर मुक्त होता है परन्तु न समझने वालों को इस बन्ध का तरना समुद्र से अधिक कठिन है ॥२२॥

अविद्या (अज्ञान) व पदार्थों की इच्छा और कर्त्तव्य बुद्धि यह बन्ध है उसको ब्रह्म ज्ञान रूप उपाय से भिन्न और किसी प्रकार जीव कल्पों तक छूट नहीं सकता ॥२३॥

न योग साधने पर, न सांख्य के विचार से और न कर्मों के करने पर तथा न शास्त्रों के पढ़ने मात्र से मुक्त होता है। किन्तु ब्रह्मात्मा के एक ज्ञान कर मुक्त होता है ॥२४॥

सर्व वेदों का तत्व सार यह है कि शास्त्रों का पढ़ना व देवों का यज्ञ और कर्मों का अनुष्ठान तथा देवताओं के भजन करने पर भी कैवल्य मुक्ति नहीं होती अर्थात् ब्रह्मात्म के अद्वैत ज्ञान हुए बिना कल्पों तक नित्य मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती यह वेद, वेदांत का निचोड़ है ॥२५॥

अविज्ञाते परे तत्त्वे शास्त्राधीतिस्तु निष्फला। विज्ञातेऽपि परे तत्त्वे शास्त्राधीतिस्तुनिष्फला।
शब्द जालं महाऽरण्यं चित्तभ्रमणकारणम्। अतःप्रयत्नाज्ज्ञातव्यं तत्त्वज्ञास्तत्त्वमात्मनः२७
तदा नाहं तदा मोक्षो यदाहं बंधनं तदा। मत्वेति हेलया किञ्चिन्मा गृहाण विमुञ्चमा॥२८
तदा बंधो यदा चितं किञ्चिद्वाञ्छति शोचति। किञ्चिन्मुञ्चति गृह्णाति किंचिद्धृष्यति कुप्यति
ऋते ज्ञानात्र मुक्तिः ज्ञानादेव तु कैवल्यम्। यज्ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्वं च गच्छति॥३०

नाहीं पाया ज्ञान निज, अफल शास्त्र पढ़ वेद। हुये ज्ञान पश्चात भी, निष्फल पढ़ना खेद।
लखो शास्त्र सब सघन बन, चित्त भ्रमण का हेतु। ब्रह्म आत्म की शरणलै, ज्ञान पाइ तू चेत।
तजि हंकारहिं मुक्त हो, बंध जान हंकार। त्यागन-संग्रह बुद्धि कब, लखा ब्रह्म इक सार।
पुरुष बन्ध है तभी लग, लखे इच्छ निज शोच। ब्रह्मातम नहिं धर्मवह, कहाँ मोच्छ की लोच।
बिना ज्ञान नहिं भवतरे, केवल ज्ञानहिं सार। ब्रह्म ज्ञान कर मुक्ति नित, होवे अमर अपार।

प्रश्न—शास्त्रों का पढ़ना भारी साधन है, इसका निषेध कैसे हो ?

उत्तर—श्री शंकराचार्य कहते हैं कि अनेक शास्त्रों के पढ़ने, पढ़ाने पर भी जो ब्रह्मज्ञान न हुआ तब शास्त्रों का पढ़ना निष्फल है और जब ब्रह्मात्म ज्ञान हो गया तब शास्त्रों से कुछ प्रयोजन नहीं रहता ॥२६॥

बिना आत्म ज्ञान के मनुष्यों के चित्तों को भ्रमाने का कारण यह शब्द जाल (शास्त्रों के बिधि, निषेध) रूप वाक्य हैं इसलिये मुमुक्षुओं को अपनी मुक्ति अर्थ ब्रह्म वेत्ता के द्वारा ज्ञान को पाकर कृत कृत्य होना चाहिये ॥२७॥

अहंकार का त्याग मुक्ति प्रद है और जब तक देह आदि में अभिमान है तभी तक दृढ़ बन्धन है अर्थात् सर्व वेद, वेदान्त का उपदेश यही है कि मुमुक्षु, ग्रहण, त्याग का अभिमान सर्वथा त्याग देवे ॥२८॥

जब तक मैं ग्रहण त्याग करने वाला हूँ तथा हर्ष, विषाद आदि का कर्त्तव्य (अहंकार) विद्यमान है तब तक जीव बँधा हुआ है जब यथार्थ ज्ञान के द्वारा अपने को अकर्त्ता (गर्व रहित) जान ले तभी मुक्त है ॥२६॥

वेद भगवान् का यह सिद्धान्त है कि बिना ब्रह्मज्ञान के मुक्ती नहीं हो सकती अर्थात् ब्रह्मज्ञान द्वारा कैवल्य मुक्ति होती है इसलिये मुमुक्षु ब्रह्मज्ञान को पाकर ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है ॥३०॥

तत्त्वं शोधन तृतीय रत्न

वेदान्त प्रक्रिया विभास (११)

मोक्षस्य काङ्क्षा यदि वै तवास्ति त्यजाति दूराद्विषयान्विषं यथा ।
पीयूष वत्तोष दया क्षमार्जव प्रशान्त दान्तीर्भज नित्यमादरात् ॥१॥
सदा विचारयेत्तस्मात् जगज्जीव परात्मनः । जीवभाव जगद्भाव बाधेस्वात्मैवशिष्यते॥२
जीवेशौच विशुद्धा चिद्विभागस्तु तयोर्द्वयोः। अविद्या तच्चितेर्योगः षडस्माकमनादयः॥३॥

गुण दैवीयह धार उर, विषयों से वैराग। श्रवण मनन लहि ध्य। नवर, पाइ ज्ञान बड़ भाग।
मोक्ष लहे नित ज्ञानसे, कर हो नित्यविचार। दुःख असज्जड़ दृश्य सब, जीवब्रह्म निरधार।
षट अनादियह जानइव, जग अरोप अपवाद। असत वस्तुसब हानिके, गुरुलखुब्रह्मप्रसाद।

प्रश्न—ब्रह्मज्ञान प्राप्ति के लिये वेदान्त की सब प्रक्रिया कहिये ।

उत्तर—यदि मोक्ष की तीव्र इच्छा हो तब सर्व विषयों को विष के समान दुःखदाई जानकर त्याग और अमृत के तुल्य आनन्दप्रद दया आदि शुभ गुणों को हृदय में धारण कर तब शुद्ध भावों युक्त चित्त में चार साधन प्रगट होकर सद्गुरु द्वारा श्रवण, मनन, निदिध्यासन रूप अभ्यास के प्राप्त होने पर ब्रह्मज्ञान दृढ़ होकर कैवल्य मुक्ति होती है ॥१॥

सर्व दुःखों का नाश व परमानन्द की प्राप्ति रूप कैवल्य मुक्ति ब्रह्मज्ञान से होती है वह ज्ञान अदृढ़ व दृढ़ भेद से दो प्रकार का है अर्थात् महावाक्यों के सुनने से कोमल ज्ञान होता है तिसकी दृढ़तार्थ जीव, जगत् व ईश्वर और शुद्ध ब्रह्म का विचार (अभ्यास) होकर ब्रह्मज्ञान दृढ़ होता है अर्थात् नित्य मनन, निदिध्यासन रूप अभ्यास करके सर्व संशय व विपर्य्य दूर होते हैं ॥२॥

शुद्ध ब्रह्म, ईश्वर, जीव प्रकृति और इनका भेद व सर्व का सम्बन्ध यह षट, आरोप दशा में अनादि माने हैं। जिसकी आदि (उत्पत्ति) न हुई हो वह अनादि है। अर्थात् विचार (ज्ञान) काल में शुद्ध ब्रह्म सत्य और बाकी पाँचों मिथ्या हैं। सद्गुरु के उपदेश से सर्व आरोप को असत्य जानकर एक ब्रह्म निश्चय होने पर मुक्ति होती है। यह वेद वेदान्त का सिद्धान्त है ॥३॥

यथा मुंजादिषीकैवमात्मायुक्त्या समुद्धृतः। शरीर त्रितयाद्धीरैः परं ब्रह्मैव जायते ॥४
अन्वय व्यतिरेकाभ्यां पंचकोष विवेकतः। स्वात्मानं ततउद्धृत्य परं ब्रह्म प्रपद्यते ॥५
जाग्रत स्वप्न सुषुप्त्यादि प्रपंचंयत्प्रकाशते। तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा सर्व बन्धैःप्रमुच्यते॥६

मैं साक्षी त्रय देह का, थूल देह पंचान। कृत अपंचीलिंग वपु, कार्ण देह अज्ञान॥
अन्न प्राण विज्ञानमन, पंचकोश आनंद। सभी असज्जड़भेद युत, सत चैतन सुखकंद॥
जाग्रतस्वप्नसुषुप्तियह, असतदृश्य व्यभिचार। तुर्या पद है ज्योतिमय, ब्रह्मातम निजसार॥

प्रश्न—किन-किन युक्तियों से ब्रह्मज्ञान शीघ्र होता है यह बताइये।

उत्तर—तुर्यों से मूँज को भिन्न करने के भाँति तीनों देहों से भिन्न आत्मा को साक्षी रूप असंग जान के ज्ञान को पाकर ज्ञानी निर्गुण ब्रह्म में एक होता है आकाश आदि पाँच भूतों के पंचीकरण होने पर स्थूल देह बना है यानी एक-एक भूत के दो-दो भाग बराबर हुए फिर एक-एक के चार-चार अंश हो एक-एक बड़ा भाग अपना व एक-एक छोटा भाग और भूतों का सर्व मिल के पंचीकरण हो स्थूल देह बन गया।

सर्व भूतों के मिले सत्व अंश से अन्तःकरण व भिन्न-भिन्न तत्वों के सत्व अंश से ज्ञान इन्द्रियाँ, मिले हुए रजोअंश से पाँच प्राण व भिन्न-भिन्न रजो अंश से पाँच कर्म इन्द्रियाँ यह सभी मिलकर सत्रहि तत्व सूक्ष्म देह हुआ और इन दोनों देहों का हेतु अविद्या कारण देह है। मैं इन तीनों देहों का साक्षी असंग आत्मा हूँ ॥४॥

अन्न, प्राण, मन, विज्ञान, आनन्द यह पाँच कोष (परदे) आत्मा को ढकते हैं इनके ठीक विचार होने पर पाँचों कोषों से अतीत (अलग) मैं आत्मा चैतन्य हूँ, अन्न से तय्यार हुआ स्थूल देह अन्नमय, पाँच कर्म इन्द्रिय व पाँच प्राण यह प्राणमय पंच ज्ञान इन्द्रिय व मन मिलकर मनोमय पाँच ज्ञानइन्द्रिय व बुद्धि मिलकर विज्ञान मय और अविद्या व प्रिय आदि, तीनों वृत्तियाँ मिलकर आनन्दमय कोष, इन पाँचों कोषों को मैं एक रस जानने वाला इनसे न्यारा हूँ ॥५॥

इसी प्रकार जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनों का साक्षी (स्वयं प्रकाश) शुद्ध मैं हूँ इस ज्ञान से विद्वान बन्ध से मुक्ति पाता है ॥६॥

अहं भास्य देहेऽस्मिन्निःशेष विलयाविधिः। सावधानेनयुत्तयात्मा स्वाध्यासापयं कुरु ।७।
श्रुत्यायुत्तायास्वानुभूत्याज्ञात्वासार्वात्म्यमात्मनः। कचिदाभासतःप्राप्तस्वाध्यासापनयंकुरु।

एषोऽन्तरात्मा पुरुषः पुराणो निरन्तराखण्ड सुखानुभूतिः।
सदेक रूपः प्रति बोध मात्रो येनेषिता बाग सर्वश्चरन्ति ॥९॥

दशातीन अध्यस्त जग, असत रजत की भांति। अंश सत्यदो शुक्तिवत, अर्थज्ञानभरमांति।
अर्थ रूप अध्यासयह, है संसर्गस्वरूप। युक्ति प्रमाणहि बाधकर, अन्योन्यहि पिख रूप।
विधी निषेध्य विशेषणे त्रिधीरूप साक्षात। जग निषेध कर दूज कहि, ब्रह्म नामबीसात।

प्रश्न—पहले कही जाग्रत आदि तीनों अवस्था झूठी कैसे हैं।

उत्तर—जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति यह तीनों अवस्थाएँ अधिष्ठान ब्रह्म के अज्ञान काल में प्रतीत होती हैं और तीनों परस्पर व्यभिचारी (भिन्न-भिन्न) हैं। जैसे शुक्ति (सीपी) के ज्ञान हुए रजत (रुपा) की भ्रांति दूर होती है तैसे ही ब्रह्म के ज्ञान से जाग्रत आदि तीनों असत्य भासती हैं। और जो ज्ञान काल में भासे वह विशेष अंश सत्य हैं, जैसे अद्वैतता, मुक्तता और जो ज्ञान, अज्ञान दोनों कालों में भासे व सामान्य अंश, यह भी सत्य है जैसे अस्ति भाति, प्रिय हैं तथा जो अज्ञानकाल में भासे वह कल्पित विशेष अंश है जैसे जाग्रत आदि तीनों अवस्था रूप जगत् की भ्रांति है इसको अध्यास भी कहते हैं जगत् अर्थाध्यास व जगत् का भासना ज्ञानाध्यास है।७।

वेद आदि के प्रमाणों व शास्त्रों की दृष्टान्तरूप युक्तियों और अपने अनुभव करके शुद्ध आत्मा में भासा हुआ जो अन्तःकरण व उसके धर्म और देह आदि जगत् का जो अध्यास है उसको दूर करो।८।

अन्तर आत्मा स्वयं ज्योति, अनादि, भेद रहित, चिदानन्द, नित्य, एक रस, ज्ञानस्वरूप है, इसकी सत्ता, स्फूर्ति से जगत् के सर्व व्यवहार होते व भासते हैं उस ब्रह्म के विशेषण विधि व निशेद्ध्य भेद से बीस हैं जो साक्षात् स्वरूप को जनाते हैं वह विधि रूप जैसे ब्रह्म, आत्मा आदि और जो जगत् को निशेद्ध करके जनाते हैं, वह निशेद्ध्य रूप, जैसे अद्वैत, अखण्ड इत्यादि बीस विशेषण मुख्य हैं इनको भाग त्याग लक्षणा द्वारा और वेद वेदान्त के प्रमाणों को विचार कर निश्चय किये से कैवल्य मुक्ति की प्राप्ति होती है ॥९॥

नव्यापित्वाद्देशतोऽतो नित्यत्वान्न पिकालतः।नवस्तुतोपि सार्वात्म्यादानंत्यंब्रह्मणित्रिधः।१०
शुद्धं सूक्ष्मं निराकारं निर्विकारं निरञ्जनम्। अप्रमाणमनिर्देश्यमप्रमेयमतीन्द्रियम्।११।
अहमर्थ परित्यागादहंब्रह्मेतिधीः कुतः। नैवमशस्यहि त्यागो भागलक्षण योदितः।१२।

सत चेतन आनन्दमय,दशा काल भरपूर। दुःखअसञ्जड़दृश्यसब,आतमइनसेदूर।
शुद्ध सूक्ष्म आकार बिनु,माया रहित निर्वेद। वृत्ती व्याप्ती संत लखु,कहें लक्षण वेद।
ततत्वंपदकेवाच्यपिख,ततपद ईशहि जान।अविदिउपाधि जीवत्वं लखिचेतन पहिचान।

प्रश्न–ब्रह्मात्मा अनादि अनन्त कैसे जाना जाय सो कहिये।

उत्तर–सर्व जगत् में व्यापक होने से आत्मा का देश से अन्त नहीं होता व सदैव(एक रस) रहने पर काल से उसका भेद नहीं और सम्पूर्ण पदार्थों में भरपूर होने से वस्तु का परिच्छेद (भेद) ब्रह्मात्मा में नहीं इसलिये सत्य, चैतन्य, आनन्द स्वरूप ब्रह्म सर्व अवस्थाओं व सम्पूर्ण जगत् में सत्यरूप से विद्यमान, सर्व का प्रकाशक स्वयं ज्योति और प्राणी मात्र को आनन्दित करनेवाला सभी में पूर्ण है और जगत् असत्य, जड़, दुःखरूप है इसलिये देह आदि सर्व जगत् में सत्यता, व सुख बुद्धि को त्याग कर ज्ञान द्वारा मुक्ति होती है ॥१०॥

राग द्वेष रहित शुद्ध, सत्य सूक्ष्म (मन इन्द्रियों का अविषय) उत्पत्ति आदि षट विकारों से रहित और माया अविद्या रूप मलों से अतीत (असंग) स्वतः सिद्ध निराकार (नेति नेति) प्रमाणों का अगोचर इन वाक्यों से ब्रह्मात्मा को वृत्ति व्याप्ति द्वारा संत विद्वानों का आवर्ण दूर होकर स्वयं प्रकाश से स्फुर्ण होता है और वेद व गुरु लक्षणा वृत्ति कर माया व अविद्या रूप विरोधी अंशों (उपाधियों) को त्याग कर कहते व जनाते हैं इसीलिये गुरु व वेदान्त सम्प्रदाय चली आती है ॥११॥

एक देशी अभिमान को त्याग कर मैं पूर्ण ब्रह्म हूँ यह वृत्ति कैसी होती है अर्थात् विरोधी अंशों का त्याग करके अविरोधी अर्थों को महावाक्य लखाते हैं यानी तत्त्वं पद में स्थित विरोधी भागों को त्याग चैतन्य मात्र का यथार्थ ज्ञान होता है इस पर जन्म मृत्यु संसार बन्धनों से रहित हुआ ज्ञानी कृतकृत्य भाव को प्राप्त होता है ॥१२॥

सत्यज्ञानानन्तानन्दपरिपूर्णं सनातनमेकमेवाद्वितीयं ब्रह्म चित्स्वरूपंनिरंजनंपरंब्रह्म॥१३
यदिदंसकलंविश्वंनाना प्रतीतिमज्ञानात्। तत्सर्वं ब्रह्मैव प्रत्यक्ताशेष भावना दोषम्॥१४
इमां सप्त पदां ज्ञान भूमिमा कर्णयानघ। नानया ज्ञातया भूयो मोह पंके निमज्जसि ॥१५

ब्रह्मसमानविशेषविधि,कल्पितजगतविशेष्य। भांतिसमानहिअस्तिप्रिय अद्वैयमुक्तिअशेष्य
ब्रह्मवस्तु ज्ञयजानइव,जगअनर्थ सब बाध। ब्रह्मसच्चिदानंद लखि,मुक्ति परम को साध॥
सातभूमिकाज्ञानहित,शुभेइच्छासुविचार। तनुसत्वापति शक्तिज,सबअभावचिद्सार॥

प्रश्न—ब्रह्म तत्त्व की अद्वैत रूपता कैसे जानी जाय यह स्पष्ट कहिये ?

उत्तर—सत्य, चैतन्य आनन्दस्वरूप जो ब्रह्मात्मा है वह सर्व में पूर्ण हो रहा है, अनादि सिद्ध व माया आदि उपाधियों से परे केवल अद्वितीय स्वरूप निश्चय होता है और विशेष व सामान्य रूप सत्य ब्रह्म में कल्पित विशेष अंश आरोपित है जैसे एक साक्षी चैतन्य में स्वप्नसृष्टि मिथ्या भासती है ॥१३॥

अद्वैत ज्ञान का विषय ज्ञेयरूप आत्मा को शास्त्रों की सत्य युक्तियों से निश्चय करना अर्थात् अज्ञान से कल्पित जगत् में अनादिता आदि सर्व धर्मों के प्रत्यक्ष प्रतीत होते भी आकाश की नीलता के तुल्य जगत् असत्य है, एक ब्रह्मात्मा सत्य, चैतन्य, आनन्द मुक्त स्वरूप है, यानी तीनों कालों व सर्व अवस्थाओं में आत्मा नित्य है अपना अभाव कोई कभी कहता नहीं किन्तु सर्व दशाओं मध्य मैं हूँ यह सर्व मनुष्यों को अनुभव होता है तथा मनो राज्य व देशांतर में गई वृत्तियों का एक रस जानने वाला साक्षी चैतन्य अद्वैत आनन्द स्वरूप ब्रह्मात्मा है ऐसे सिद्ध (निश्चय) होने पर कैवल्य मुक्ति होती है ।१४।

ज्ञान के साधक चित्त की अवस्थाएं रूप जो सात भूमिकाएं हैं वह यह हैं कि शुभ (मोक्ष) की इच्छा (शुभेच्छा) १, श्रेष्ठ विचार होना (सुविचारना) २, मन की वृत्तियों को तनु सूक्ष्म करना (तनुमानसा) ३, सत्वभाव की प्राप्ति (सत्वापति) ४, सर्व आसक्ति का त्याग (असंसक्ति) ५, सब पदार्थों के अभाव युक्ति जगत् की असत्य भावना (पदार्थाभावनी) ६, तुर्यरूप आत्मा की निश्चय रूप प्राप्ति (तुर्यगा) ७, यह सातों भूमिकाएं अपने-अपने नामों के अर्थों से सिद्ध की गई हैं। इनके सदा अभ्यास करने पर ब्रह्मात्मा का अद्वैत ज्ञान दृढ़ होता है यही मुक्ति पद है ॥१५॥

जीवन्नेव सदा मुक्तःकृतार्थो ब्रह्मवित्तमः।उपाधि नाशाद्ब्रह्मैव सन्ब्रह्माप्येति निर्द्वयम्॥१६
ब्रह्मैवाहमिति ज्ञाने सत्ये सोदेति भावना। तस्मिन्सत्ये निजेरूपे यथांतः परिलीयते ॥१७
सतिविस्तारनेतस्मिन्ब्रह्मेदमितिवेद्मयहम्।त्वमहंत्वादिबाधेतत्सदित्यादिजगद्गतम्॥१८
न त्यजामि न वांछामि ब्रह्माहमिति सत्यता। अहं रक्तमहं मांसमहमस्थीन्यहं वपुः॥१९

जीवन्मुक्ती ज्ञान दृढ़,भेद भरम सब हानि।लेश अविद्या कर्म सब,विलय विदेही जान।
अहं ब्रह्म के ज्ञान से,एक भावना होय। जीव जगत यह भाव सब, जानों अद्वै सोइ।
निश्चय होइ अखंडता,मैं हूँ ब्रह्म अनूप। इदं, अहं,त्वं झूठ सब,अस्ति भांति प्रिय रूप।
नहि चाहूँ नहि त्याग मम,मैं हूँ ब्रह्मस्वरूप। सप्त धातु मय देह भी,निश्चयसत्यअरूप।

प्रश्न–जीवन्मुक्ति व विदेहमुक्ति दोनों का स्वरूप वर्णन कीजिये।

उत्तर–जो जो विद्वान् स्वप्रारब्ध अनुसार जीवतरूप सर्व व्यवहारों को करता हुआ अपने स्वरूप को सदा मुक्ति स्वरूप जानता है वह श्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता कृतार्थ रूप है और अविद्या व अन्तःकरण आदि सर्व उपाधियों के नाश हुये अद्वैत ब्रह्म तत्व में अभेदरूप विदेह मुक्ति प्रारब्ध की समाप्ति से पाता है ॥१६॥

महावाक्यों के उपदेश के अभ्यास द्वारा ब्रह्म मैं हूँ ऐसी ज्ञानरूप भावना दृढ़ होती है उस सत्य निश्चय के प्रभाव से विद्वान् अन्त में विदेह मुक्त होता है ॥१७॥

विस्तार सहित सर्व जगत् के बाध निश्चय द्वारा मैं एक ब्रह्म हूँ और अहंता, ममता, त्वंता इत्यादि भेद वासना के अभाव हुये अस्ति (सत्य) भाति (चैतन्य) प्रिय (आनन्द) स्वरूप मैं ब्रह्म नाम रूप आदि उपाधियों से मुक्त हूँ। यह निश्चय जीवन्मुक्त पद है और विदेह मुक्ति प्रारब्ध की समाप्ति हुये प्राप्त होती है ॥१८॥

वास्तव दृष्टि से न मैं किसी को त्याग करता हूं और न ग्रहण, कारण यह है कि जगत् का अत्यंताभाव है और मैं ब्रह्म चैन्य निधर्मक हूँ, तथा रक्त, मांस का पिण्ड, देह, मैं नहीं हूँ और न यह मेरा है ज्ञान की दृढ़ता ही जीवन मुक्ति है अर्थात् जगत् के सर्व व्यवहारों के प्रतीति होते भी अपने को सर्व धर्म व उपाधियों से अतीत सदा मुक्ति स्वरूप जानना जीवन्मुक्त दशा है। अन्ध, जड़, मूक होने को जीवन्मुक्ति वेदान्त नहीं कहते किंतु जगत् को सत्य नहीं देखने से अन्धवत् ऐसे ही जड़ता आदि को जानिये ॥१९॥

समःस्वस्थो विशोकौस्मिब्रह्माहमिति सत्यता।कलाकलंकमुक्तोस्मि सर्वमस्मिनिरामयः।२०
चिदात्मांतगतं शांतं परं ब्रह्म रसात्मकम्। यस्मिन्सर्वं यतः सर्वं यत्सर्वं सर्वतश्चयत्॥२१
आलोकः सुमनो मौनंचिद्ब्रह्मास्म्यमृतं परम्। अनारतगलद्रूपं नित्यं चानुभवामृतम्॥ २२
सर्वेषानेक रूपं तच्चिद्ब्रह्मास्मि समः स्थितः।सर्वगा प्रकृतास्वच्छरूपा भानोरिव प्रभा॥२३

हीन धर्म सब कूट सम,नित्य मुक्त अविकार।कलारहित हूँमुक्तमम,सुरक्ख धारणा धार।
चैतन अन्तर शांत इक,सुख मय आतम ज्ञान।सब हूँ सब में,रम रहा,रंच भेद नहिं मान।
ज्ञानी लखते विषय नहिं,परमानन्द महान। सोइ ब्रह्म अभेद में,अमररूप चिद् ज्ञान।
अजहि अनंत विकार बिन,सबमें पूरण वास।मैं हूँ भानुप्रकाशवत् निर्मल चैतन रास।

प्रश्न—सर्व धर्मों व क्रियाओं से रहित ब्रह्मात्मा का निश्चय दृढ़ कैसे हो।

उत्तर—ब्रह्मात्मा नित्य सम (घटनें बढ़ने से अतीत) स्वस्थ रूप व चिंता, शोक आदि से रहित चैतन्य ब्रह्म मैं हूँ तथा सर्व कलना से परे केवल मुक्त स्वरूप आनन्द घन मैं हूँ, बारम्बार ऐसा अभ्यास करने पर ब्रह्मज्ञान की दृढ़ता होती है ॥२०॥

चैतन्य आत्मा सर्व के अन्तर शांत स्वरूप ब्रह्म (पूर्ण) आनन्द मैं हूँ यह निश्चय ही ब्रह्मज्ञान कहलाता है। और यही जीवन्मुक्त दशा है। इससे भिन्न जीवन्मुक्ति को सर्वज्ञ नहीं लिखते किंतु दत्तात्रेय ने अपनी रचित जीवन्मुख गीता में विस्तार से यह अर्थ लिखा है वह दूसरे भाग में वर्णन करेंगे ॥२१॥

राज्य योग (अद्वैत ज्ञान) द्वारा सर्व प्रमाणों व वृत्तियों का अविषय स्वयं प्रकाश अमृत आनन्द स्वरूप मैं हूँ। अर्थात् सर्व उपाधियों व भूत भौतिक जगत् से परे सर्व का साक्षी (अनुभव) करता आत्मा नित्य अमृत रूप मुक्त हूँ यह विचार ही मुक्त का द्वार है ॥२२॥

सम्पूर्ण भूत प्राणियों के अन्तर स्थित सत्य चिदानन्द सम (निर्विकार) स्वरूप परम निर्मल सूर्य के तुल्य स्वयं ज्योति सदा प्रकाशमान है। इसका नित्य अभ्यास करते हुए केवल (अद्वैत) ब्रह्मात्मा मैं हूँ इस प्रकार अपरोक्ष ज्ञान की दृढ़ता होकर कैवल्य भाव की प्राप्ति होती है इसी ज्ञान को जीवन्मुक्ति कहते हैं और देह के त्याग के पश्चात् विद्वान् विदेह मुक्त होता है ॥२३॥

उपदेश श्रवण विभास (१२)

यदिदेहंपृथककृत्वा चिति विश्राम्य तिष्ठसि। अधुनैव सुखीशांतोबन्ध मुक्तोभविष्यसि १
धर्माधर्मौसुखंदुःखं मानसानि न ते विभो।न कर्त्तासिन भोक्तासि मुक्त एवासि सर्वदा।।२
अहं कर्तेत्यहंमान महाकृष्णाहि दंशितः। नाहं कर्त्तेति विश्वासामृतं पीत्वा सुखी भव।३।
कूटस्थं बोधमद्वैतमात्मानं परिभावय। आभासोहं भ्रमं मुत्त्वाभावं बाह्यमथांतरम्।४।

देह आत्म से भिन्न लखि,चैतन में विश्राम।मिले शांति सुखबन्ध हत,होय मुक्ति अभिराम
पुण्य पाप अरुदुःख सुख,धर्म सभी मन केर। कर्त्ता भुक्ता नहिं वपु.मुक्त पूर्ण निज हेर।
कर्त्ता भुक्ता नाग विष,डसा जीव अनजान।बुद्धि अकर्त्ता सुधा यह,पी सुख निश्चय ज्ञान
भरम भास को त्याग पुनि, बाह्यान्तर सब जोइ। चेतनथपुइक आतमा,निश्चययहदृढ़होय

प्रश्न–अत्यन्त शीघ्र मुक्ति होने की प्रबल जो युक्ति है वह बतलाइये।

उत्तर–तीनों देहों से भिन्न आत्मा को निश्चय कर चैतन्य ब्रह्म मैं हूँ ऐसा जानकर तू स्थित हो अर्थात् देह आदि सर्व जगत् मेरे से भिन्न उलटे धर्मोंवाला है और मैं सर्व का साक्षी चैतन्य स्वरूप हूँ इस प्रकार के अभ्यास से शीघ्र शान्त व आनन्द स्वरूप हुआ तू मुक्त होवेगा ॥१॥

धर्म (सर्व पुण्य क्रियाएं) अधर्म (सम्पूर्ण पाप) और सुख भोग व दुःख दशा यह सभी मन (अंतःकरण) के धर्म हैं अर्थात् हृदय में होते हैं शुद्ध आत्मा में कभी नहीं किन्तु आत्मा अकर्त्ता, अभोक्ता सदैव मुक्त स्वरूप है मुमुक्षुओं को यही दृढ़ निश्चय करना मुक्ति का द्वार है। और व्यवहार दशा में राग, द्वेष आदि को प्रयत्न द्वारा अल्प करना आनन्ददायक है। परन्तु राग, द्वेष आदि धर्म विद्वानों में होते हैं व नहीं, यह कल्पना मिथ्या है ॥२॥

मैं धर्म व अधर्म का कर्त्ता और सुख, दुःख आदि का भोक्ता हूँ इस अज्ञान रूप काले नाग ने जीव डस लिये हैं किंतु मैं कर्त्ता, भोक्ता नहीं इस निश्चय रूप अमृत को पान करके आनन्दित (मुक्त स्वरूप) हो ॥३॥

सम्पूर्ण क्रियाओं व धर्मों से रहित एक ज्ञान स्वरूप ब्रह्मात्मा को निश्चय करके देहों के धर्म कर्तृत्व आदि मिथ्या कलंक को त्याग करके स्वस्थ (मुक्त) हो, जो मनुष्य ज्ञान से पीछे देह अतःकरण के धर्मों की विद्वानों में कल्पना करते हैं वह ज्ञान से रहित हैं ॥४॥

निःसंगो निष्क्रियोऽसि त्वं स्वप्रकाशो निरंजनः।अयमेवहि्ते बन्धः समाधिमनुतिष्ठसि।५
निरपेक्षो निर्विकारो निर्भरःशीतलाशयः। अगाध बुद्धिरक्षुब्धो भव चिन्मात्र वासनः।६
एकं सर्वगतं व्योम बहिरंतर्यथा घटे। नित्यं निरंतरं ब्रह्म सर्वं भूत गणे तथा।७
निषि द्ध्यनिखिलोपा धीन्नेतीति वाक्यतः।विद्यादैक्यं महावाक्यैर्जीवात्म परमात्मनो ८

असंग अक्रिय जान वपु, निर्मल स्वयं प्रकाश। बंधनतेरेयहीदृढ़,हो समाधि निज आश।
नहि् विकार विक्षेप कुछ,पूर्ण अगाध स्वरूप।चैतन आतम क्षोभ बिन,शीतल उरलखिरूप।
व्यापकजैसे घटहि् नभ,बाह्यांतर पहि्चान। भौतिकभूत प्रपञ्चमें, ब्रह्म पूर्ण नित जान।
नेति नेति इस वाक्य कर,सर्व उपाधी त्याग। ईश्वर जीवहि् एकता,महा वाक्यसे जाग।

प्रश्न—समाधि करने से प्रयोजन क्या सिद्ध होता है, सो कहिये ?

उत्तर—एक हठ योग रूप,दूसरी राज्य योग रूप समाधि है। हठयोग रूप समधि के सिद्ध होने पर हृदय शुद्धि व सिद्धियों की प्राप्ति होती है परन्तु राज्य योग रूप समाधि अद्वैत ज्ञान को कहते हैं अर्थात् असंग, निष्क्रिय, प्रकाश स्वरूप ब्रह्मात्मा का एक निश्चय रूप समाधि सर्वोत्तम है और समाधि का कर्त्तव्य समझना बन्धन रूप है परन्तु हठ योग का साधना कलियुग में अति कठिन है कारण यह है कि यम, नियम आदि साधन इस काल में बनने कठिन हैं और शुद्ध भावों केहोने व पद पदार्थों के जानने से ब्रह्मज्ञान का प्रकाश, अभ्यास के द्वारा सुगम हो सकता है ॥५॥

आत्मा सर्व वासना से रहित व षट विकारों से अतीत, व्यापक शान्त स्वरूप अपार है, विक्षेप (चंचल वृत्ति) को त्याग करके उस चैतन्य की दृढ़ भावना करो तब सर्वथा उन्नति व कैवल्य पद को पाकर के कृतार्थ होवोगे ॥६

जैसे घट के बाहर, भीतर आकाश पूर्ण होता है तैसे ही सर्व भूत प्राणियों के भीतर, बाहर ब्रह्म सदैव व्यापक है कहीं दूर व दुर्लभ नहीं, विचार करने से साक्षात्कार होता है ॥७॥

नेति नेति इस श्रुति वाक्य से सम्पूर्ण उपाधियों को त्याग करके अद्वैत चैतन्य मात्र को महावाक्यों के विचार से निश्चय करना चाहिये और जो भेद भासता है वह केवल अज्ञान कर है आकाश की नाई ब्रह्मात्म एक पूर्ण है ऐसा जान विद्वान कृत कृत्य होता है ॥८॥

तस्मिन्ब्रह्मण्य द्वितीये केवले परमात्मनि । ब्रह्मरुद्रौ च भूतानि भेदेनाज्ञोऽनुपश्यति ॥९
एक एव परोह्यात्मा सर्वेषामपि देहिमाम् । नानेव गृह्यते मूढैर्यथा ज्योतिर्यथा नभः ॥१०
सर्व भूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः । भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः॥११
अर्थेह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते । ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमोयथा ॥१२

निर्मल अद्वै ब्रह्म गत, रुद्र भूत गण भेद । अज्ञानी नर जानते, वास्तव नित्य अभेद ।
तनधारी सब आतमा नाना अज्ञ स्वरूप ।तेजवस्तुसबभान जिमि,तरु भासे नभ रूप ।
सब भूतों में ब्रह्म इक,दृढ़ निश्चय विद्वान् । भगवत माहीं भूत सब,लखें रूप भगवान् ।
बिन पदार्थ संसार दृढ़,विषयोंकाजब ध्यानास्वप्न अवस्था देख सब,होंइ अनर्थ महान् ।

प्रश्न—भेद माने बिना व्यवहार, परमार्थ कैसे सिद्ध हो सकते हैं ? इस अर्थ को निष्पक्षता सहित स्पष्ट कीजिये ।

उत्तर—सत्य है व्यवहार में तो सभी को भेद मानना अवश्य पड़ता है अर्थात् भेद माने बिना कोई कार्य नहीं हो सकता । परन्तु अद्वैत शुद्ध परमात्म (ब्रह्मात्म) में व ईश्वर और जीवों में वास्तव से भेद मानना अज्ञानता है । जैसे मिट्टी के सर्व बासनों में मिट्टी व आकाश एक है तैसे माया व चैतन्य वस्तु सर्व एक है, भेद कुछ नहीं । हाँ जगत् के नाम, रूप और व्यवहारों में भेद ठीक है ॥९॥

सर्व भूत भौतिक प्राणियों की आत्मा एक है जैसे सूर्य का प्रकाश सर्वत्र एक और आकाश सब में एक पूर्ण है तैसे ही ब्रह्मात्म सर्व देहधारियों में अद्वैत पूर्ण है । अनजान ब्रह्मात्मा में वास्तविक भेद मानते हैं । इस प्रसंग से यह सिद्ध हुआ कि व्यवहार दशा में ज्ञानी, अज्ञानी सब को भेद मानना पड़ता है परन्तु ज्ञान दृष्टि से ब्रह्म चैतन्य में भेद कभी नहीं ॥१०॥

जो विद्वान सर्व भूत प्राणियों में आत्म रूप भगवान् को पूर्ण देखता है और भूत भौतिक सर्व जगत् को ब्रह्मात्म में कल्पित जानता है वह भक्तों में शिरोमणि है ॥११॥

पदार्थों के अभाव मात्र (अप्रतीत) से जन्म, मृत्यु रूप बन्धन दूर नहीं होता और विषयों में राग, द्वेष करने से जैसे स्वप्नावस्था में अनहुये सर्प, सिंह आदि को देखकर जीव को व्याकुलता होती है तैसे जाग्रत में जीव कष्ट पाता है ॥१२॥

सुप्तप्रबोधयोः सन्धावात्मनो गतिमात्मदृक्।पश्यन्बन्धं च मोक्षं च माया मात्रं न वस्तुतः।
स वै प्रिय तमात्मायतो न भय मण्वपि।इति वेदसवै विद्वान्यो विद्वान्स गुरुर्हरिः।१४
आदि मध्यावसानेषु दुःख सर्वमिदं यतः। तस्मात्सर्वं परित्यज्य तत्त्व निष्ठोभवानघ।१५
अमनस्त्वं मनो यातु तवासङ्गेन जीवतः। एकमाद्यन्तरहितं चिन्मात्रमलं ततम्।१६

निद्रा सेती जाग कर,आतम मध्य समाधि।विज्ञ जानते मायसब,लखें असत्य उपाधि।
आनंदहि इक ब्रह्म वपु,नहीं रंच भय होइ। निश्चयकर विद्वान् सो,ईश गुरु सबकोइ।
त्रयकालों में दुःख निधि,जगत् सभी संताप। करो उपेक्षा इसी की,तत्त्व निष्ठ निष्पाप।
मनन रहित हो चित्तजब,तू असंगहोजीव।आदि अंत मधि एकलखु,निर्मल चैतनसीव।

प्रश्न–बन्ध,मोक्ष को सत्य क्यों न मान लिया जावे,यह वर्णन कीजिये ?

उत्तर–जैसे स्वप्न से जागने पर स्वप्न का जगत् झूठा प्रतीत होता है तैसे आत्मवेत्ता (विद्वान्) ब्रह्मात्म में बन्ध व मोक्ष आदि सर्व संसार को मिथ्या जानता है अर्थात् व्यवहार दशा में यह सब प्रतीत होते हुए भी वास्तव में सत्य नहीं हैं ॥१३॥

ब्रह्मात्मा ही सर्व से अधिक प्रियतम (आनन्द स्वरूप) है उसमें अज्ञानियों की नाईं भय मानना वृथा है इस प्रकार ब्रह्मात्म को आनन्दरूप जानने से ब्रह्मज्ञानी मुक्त स्वरूप है और वह विद्वान् सर्व संसार का परम गुरु बल्कि साक्षात् ईश्वर होता है ॥१४॥

जगत् के सर्व पदार्थ, आदि व मध्य और अन्त में दुःखदाई हैं इस कारण प्रिय, अप्रिय सब जीवों व पदार्थों को असार जान के ब्रह्मात्म तत्त्व में निश्चय वाला तू हो, तभी सर्वानन्द होंगे ॥१५॥

बाह्य (स्थूल) मन को ज्ञानमय शुद्ध मन करके असत्य व बन्धन रूप जानता हुआ ब्रह्मात्म को त्रयकाल अबाध्य (सत्य) व आनन्द एक स्वरूप निश्चय कर। जैसे नीलता आकाश की हानि नहीं कर सकती अथवा नेत्रों के विशेष मलने करके भासे जो त्रिवर्ग (तरुवरे) वह दृष्टिदोष कर प्रतीत होते भी आकाश में भेद, छेद नहीं कर सकते तैसे सर्व जगत् अज्ञान कर भासता हुआ भी पूर्ण चैतन्य में कुछ हानि नहीं कर सकता,ब्रह्म सदैव मुक्त स्वरूप है इस निश्चय पूर्वक विद्वान् निर्वान पद को प्राप्त होता है ॥१६॥

भोगैक वासनां त्यक्त्वात्यजत्वं भेदवासनम्। भावाभावौततस्त्यक्त्वा निर्विकल्पःस्थेराभव।
त्यज धर्ममधर्मं च उभेसत्यानृते त्यज । उभे सत्यानृते त्यक्त्वा येन त्यजसि तत्त्यज॥१८
निद्राया लोकवार्त्तायाः शब्दादिरात्मविस्मृतिः।कचिन्नावसरंदत्त्वा चिंतयात्मानमात्मनि।
सर्वं व्यापारमुत्सृज्यः अहंब्रह्मेति भावय । अहं ब्रह्मेति निश्चित्य त्वहं भावं परित्यज्य ।२०

भोगोंकी तज वासना,भेद बुद्धी भी त्याग।भाव अभावहि बाध कर,एक ज्ञान में जाग ।
धर्म अधर्महि नाख के,सत्य झूठ दोबाध । जिसकर त्यागइनोंको,तजिसोई अपराध ।
निद्रापुनःविवादतजि,शब्दआदिसबभोग।क्षणअवसरनहिदेउइन,करआतमनितयोग।
सब व्यवहारन त्याग के,करो ब्रह्म मय ध्यान। सभीब्रह्मजगजानइक,हंकारहि कर हान ।

प्रश्न–जगत् के पदार्थों में वासना करने पर क्या क्या अवनति होती है?

उत्तर–संसार की सर्व वासनाएं बन्धनरूप हैं, अर्थात् इनके होते हुये इसलोक में सुख व मुक्ति का लाभ नहीं हो सकता। इसलिये पहिले लौकिक दुर्वासनाओं का त्याग करके, पीछे भेद भावना भी दूर करनी चाहिये इसी प्रकार से भाव व अभाव व बन्ध,मोक्ष की वासनाओं को छोड़कर सर्व भेद से रहित निर्विकल्प (अद्वैत) ब्रह्मात्म में सदा स्थिर होकर संसार में सत् भावना का त्याग करो ॥१७॥

धर्म व अधर्म और जगत् के सर्व पदार्थों की इच्छा व सत्यता और द्वैतता इत्यादि सर्व वासनाओं को ज्ञान दृष्टि से परित्याग करके जिस विचार द्वारा इन को छोड़ा है उसकी सत्यता भी त्यागनी उचित है सार यह है कि भाव अभाव सबके मिथ्या निश्चय होने पर अद्वैत ज्ञान को प्राप्त होकर विद्वानों को कृत कृत्यता प्राप्त होती है ॥१८॥

विशेष निद्रा व लोगों से अधिक वार्तालाप और शब्द, स्पर्श आदि सर्व विषय भोगों को त्याग करके किसी वासना को हृदय में स्थान न दो किन्तु शुद्ध विचार दृष्टि से अद्वैत ब्रह्मात्मा का सदैव चिंतन करना चाहिये अन्यथा व्यवहार में विशेष हानि होती है ॥१९॥

संसार के सर्व व्यवहारों को झूठे जानके मैं अद्वैत (भेद रहित) शुद्ध ब्रह्मात्मा हूं ऐसा निश्चय करना उचित है। कि मैं ब्रह्म हूँ जब अभ्यास द्वारा ऐसा निश्चय हो तब अहं,त्वं आदि सर्व वासना का अत्यंताभाव जान करके स्वरूप में स्थित होना मुक्ति रूप है ॥२०॥

माभव ग्राह्य भावात्माग्राहकात्मा च माभव।भावनामखिलां त्यक्त्वा यच्छिष्टंतन्मयोभव।
दृष्ट दर्शन दृश्यादि त्यक्त्वा वासनया सह। दर्शन प्रथमा भासमात्मानं केवलं भज ॥२२
यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मातम्। तदेव ब्रह्मत्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥२३
यत्परं ब्रह्म सर्वात्मा,विश्वस्या यतनं महत्।सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं नित्यं तत्वमेव त्वमेव तत् ॥२४

ग्रहण योग्य तू होइ मति,ग्राहक भी मति होइ।ध्येयवासना त्याग सब, रहेशेष तु सोइ ॥
दृष्टा दर्शन दृश्य यह,सर्व त्रिपुटिको बाध।पहले सिद्धि वृत्ति ज्ञान से,शुद्धआत्मलखु साध॥
जानसके नहि बुद्धि जिस,तिसको मन का ज्ञान।समझो उसको ब्रह्म तुम,इदं रूप नहि मान॥
परम ब्रह्म इक आत्मा,है जगका आधार। सूक्ष्म ते अति सूक्ष्मौ, सो तू है ततसार ॥

प्रश्न—जब लग विद्वान का शरीर है तब तक शास्त्रीय बर्ताव होना सुखकर है वरन् मर्यादा भंग होकर अधिकारियों की अश्रद्धा होती है।

उत्तर—हाँ-मर्यादा के त्यागने से ज्ञान की दृढ़ता नहीं होती, किंतु भेद दृष्टि दूर करनी उचित है। अर्थात् ग्राहक (जीव) व ग्रहण के योग्य दृश्य यह वास्तव से नहीं, किंतु सर्व भेद से रहित व नामरूप से परे तू निर्धर्मक (शुद्ध) अद्वैत चैतन्य है और ग्रहण, त्याग आदि सर्व व्यवहार होते हुए भी स्वप्न सृष्टि के तुल्य मिथ्या हैं यानी अभेद दृष्टि पूर्वक बाह्य अपने वर्णाश्रम के अनुसार बर्ताव करना सुखदाई होता है इसलिए हृदय (निश्चय) से सर्व भेद भावना को त्याग करके अद्वैत निष्ठा वाला हो ॥२१॥

वासना सहित सर्व त्रपुटियों में भेद बुद्धि को त्याग करके वृत्तिज्ञान से पहले सर्व का प्रकाशक स्वयं ज्योति आत्मा को निश्चय करते हुए तुम सर्व व्यवहार में शान्त रहोगे ॥२२॥

ब्रह्मात्मा मन द्वारा कभी मनन नहीं हो सकता और जिसकर मन की सर्व वृत्तियों का ज्ञान होता है उसको स्वयं ज्योति आत्मा जानों अर्थात् ब्रह्मात्मा को जो शुद्ध मन का विषय मानता है उसने किसी पर प्रकाश्य अल्प वस्तु को ब्रह्म जाना है, यह भाव श्रेयस्कर नहीं ॥२३॥

जो पर ब्रह्म सर्व का आत्मा और सम्पूर्ण विश्व का आधार व अधिष्ठान अति सूक्ष्म है सो तू है। इस प्रकार ब्रह्मात्मा के निश्चय से भेद दृष्टि को दूर से त्यागना चाहिये, तब मुक्त स्वरूप है ॥२४॥

तत्त्वमसि (१) अयमात्मा ब्रह्म (२) प्रज्ञानं ब्रह्म (३) अहं ब्रह्मास्मि (४) ॥२५॥
चित्ताकाशं चिदाकाशमाकाशं च तृतीयकम्। द्वाभ्यां शून्यतरं विद्धि चिदाकाशं महामुने ॥२६
स्वात्मनोऽन्यतया भातं चराचरमिदं जगत्। स्वात्ममात्रतया बुद्ध्वा तदस्मीति विभावय ॥२७
विलाप्य विकृतं कृत्स्नां संभव व्यत्यय क्रमात्। परिशिष्टं च चिन्मात्रं चिदानंदं विचिन्तय ॥२८

सो ईश्वर है तुही इक(१) यह आतम ब्रह्म जान(२) जीव ब्रह्म है वेद सिध(३) मैं हूँ ब्रह्म प्रमान(४)
चिदाकाश सत महामुनि, दूसर चित्ताकाश । तीसर भूताकाश है, दोइ अन्त के नाश ॥
जड़ चेतन यह जगत सब, भिन्न आत्म अज्ञान। ब्रह्मातम सब विश्व लख, धारो नित यह ध्यान॥
कारण कारज विलयकर, उलटे क्रम की भांति। चिदानंद ही शेष इक, ऐसे चितवो शांति॥

प्रश्न—चारों वेदों के महावाक्य आदि का खुलासा अर्थ वर्णन कीजिये।

उत्तर—माया उपाधि सहित ईश्वर तत् पद का वाच्यार्थ है और अविद्या वशिष्ट जीव त्वं पद का वाच्यार्थ (स्पष्ट अर्थ) है तिन दोनों के लक्ष्य स्वरूप चैतन्य की नित्य एकता है। अर्थात् तत (सो ईश्वर) त्वं (तू है) १ सच्चिदानंद स्वरूप होने से यह आत्म ब्रह्म है २ परिच्छिन्नता (अल्पता) रूप उपाधि के अभाव निश्चय से जीव ब्रह्म स्वरूप है ३ मैं ब्रह्म स्वरूप हूँ ४ यह चारों वेदों के महावाक्यों का खुलासा अर्थ है ॥२५॥

एक भूताकाश दूसरा चित्ताकाश (मनरूप) तृतीय चिदाकाश (ब्रह्म) है इनमें पहले के दो मिथ्या हैं। और चिदाकाश (चैतन्य ब्रह्म) सत्य है जैसे घट के होते व न होते दोनों दशा में घटाकाश वास्तव से महाकाश है तैसे ही आत्मा को ब्रह्म स्वरूप निश्चय करो। इस प्रकार एक निश्चय करके भेद से रहित ब्रह्मात्मा को जानता हुआ मननशील (ज्ञानी) अपने स्वरूप में आनन्दित होता है ॥२६॥

ब्रह्मात्म से भिन्न जो स्थावर (जड़) जंगम (चैतन) रूप संसार भ्रम दशा में भासता है सर्व को बाध (झूठा) जानकर स्वरूप में स्थित हो। अर्थात् शुद्धात्मा में सब जगत् वास्तव से झूठा है। अतः बन्ध, मोक्ष आदि सर्व कल्पित हैं, यह निश्चय सत्य है ॥२७॥

जैसे जगत् का आरोप हुआ है उससे उलटे क्रम द्वारा सर्व कार्य रूप प्रपंच को विलय कर चिदानन्द का अभेद निश्चय करना चाहिये। यानी अद्वैत चैतन्य को विश्व भेद से रहित ज्ञानस्वरूप निश्चय करके कृतार्थ हो ॥२८॥

आत्म ब्रह्म रूप विभास (१३)

विरजः पर आकाशादज आत्मा महान् ध्रुवः।
एको देवः सर्वभूतेषु गूढ़ःसर्वव्यापी सर्व भूतान्तरात्मा ॥१

नित्यःसर्व गतो ह्यात्मा कूटस्थो दोष वर्जित। तत्परःपरमात्मा त्र श्रीरामः पुरुषोत्तमः॥२
सर्व कारण कार्यात्मा। कार्यकारण वर्जितः।सर्वातीत स्वभावात्मानादांतर्ज्योति रेव सः॥३
शुद्धचैतन्य रूपात्मा सर्वसिद्धिविवर्जितः।आनन्दात्मा प्रियोह्यात्मा मोक्षात्मा बंधवर्जितः॥४
शून्यात्मासूक्ष्मरूपात्माविश्वात्माविश्वहीनकः।सत्तामात्रस्वरूपात्मानान्यत्किंचिज्जगद्भयम्५

लखो शुद्ध आकाश सम,प्रत्यक अचलमहान्।सब भूतोंमेंदेव इक व्यापक सभी प्रधान॥
पूर्ण आत्म नित सर्व में,अचल दोष से हीन।परमात्म श्रीराम लखु,पुरुषोत्तम यह चीन॥
कारण कारज आत्मा,पुनि दोनों से रहित।सभी अतीत स्वरूप तिस,ज्योती अन्तर सहित॥
आतम चेतन शुद्धलखु,सिद्धोसे पर जान।परम प्रेम का विषय निज,बंध मोक्ष नहिं मान॥

प्रश्न—कोई आत्मा को शुद्ध व कई जीव मानते हैं, सत्य क्या है ?

उत्तर—वास्तव से देखो तो आत्मा अविद्या आदि उपाधियों से परे शुद्ध स्वरूप है, सो एक चैतन्य कूटस्थ (निष्क्रिय) और सर्व भूतों में गुप्त रूप व्यापक सर्वात्मा है (१) सर्व का साक्षी अन्तरात्मा सब भेद से रहित, तीनों गुणों से परे निर्व्यव स्वरूप है परन्तु आरोप दशा व अविचार से अविद्या व अंतःकरण उपाधि वाला लोग आत्मा को मानते हैं ॥२॥

परमार्थ से कारण, कार्य से रहित और कारण, कार्य रूप स्वयं ज्योति आत्मा ब्रह्मस्वरूप है अर्थात् विद्वान् आत्मा को निर्लेप, निराकार सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म मानते हैं, यही वेद, वेदान्त का सिद्धान्त है ॥३॥

वास्तव दृष्टि से सर्व भेद व संशयों से रहित है परन्तु व्यवहार से सविकल्प रूप भी वही प्रतीत होता है बल्कि समाधि से परे और आदि मध्य व अन्त से मुक्त रूप घन चैतन्य सर्व सिद्धियों से प्रतीत तथा बन्ध, मोक्ष आदि सर्व कल्पना से परे केवल आनन्द स्वरूप ब्रह्मात्मा है। इसको श्रुति नेति नेति कह कर वर्णन करती है ॥४॥

वह शून्य (सूक्ष्म) रूप और विश्व आकार सहित वास्तव से सम्पूर्ण जगत् के नाम, रूप आकारों से परे केवल सत्तामात्र चैतन्यस्वरूप अद्वैत, सर्वत्र व्यापक, सर्व शक्ति, सर्व पदार्थों का अधिष्ठान, ब्रह्मात्म है, ऐसा दृढ़ निश्चय करने पर विद्वान् सर्व सृष्टि कर पूज्य कृत कृत्य होता है ॥५॥

मुक्तामुक्त स्वरूपात्मा,मुक्तामुक्त विवर्जितः। द्वैताद्वैत स्वरूपात्मा द्वैताद्वैतादि वर्जितः॥६
सर्वं ह्येतद्ब्रह्म, अयमात्मा ब्रह्म। सत्यज्ञानमनंतं ब्रह्म प्रज्ञाप्रतिष्ठा प्रज्ञानं ब्रह्म॥७
आकाशवत्सूक्ष्मं केवल सत्तामात्रस्वभावंपरंब्रह्म। अद्वितीयमखिलोपाधिविनिर्मुक्तम्॥८
अपरिच्छिन्न रूपात्मा अणु स्थूलादि वर्जितः। नाम रूप विहीनात्मा परसंवित्सुखात्मकः॥९

मोक्ष बन्ध सब आतमा,बन्धन मुक्त अतीत। आत्मद्वैत अद्वैतसब,एक अनेक अतित॥
लखोसभी यह ब्रह्म इक, आत्म है ब्रह्मरूप। चेतन ब्रह्म अनन्त सत,जीवहिं ब्रह्म स्वरूप॥
शुद्ध सूक्ष्म आकाश से, केवल सत्य स्वभाव। अद्वै ब्रह्म स्वरूप इक, ब्रह्म पूर्ण इक भाव॥
शून्य अणुलखुअतिघनो,सभीरूपजगहीन।आतम सत्य स्वरूपयह,हुआजगतभय छीन॥

प्रश्न—शुद्ध ब्रह्मात्मा में बन्ध व मोक्ष यह सत्य हैं अथवा असत्य इस अर्थ का विशेष वर्णन करके प्रत्यक्ष कीजियेगा ?

उत्तर—आरोप (व्यवहारदशा) में मुक्ति व बन्धन आत्मा में माने जाते हैं वास्तव दृष्टि से बन्धन व मोक्ष की सर्व कल्पना झूठी है और ब्रह्मात्मा में द्वैत, अद्वैत भेद भी कल्पित हैं इसलिये अनेकता व एकता कभी सत्य नहीं किन्तु सर्व शब्द, अर्थों से अतीत ब्रह्मात्मा है॥६॥

जैसे सर्व भूषणों में स्वर्णपूर्ण (सत्य) है तैसे ही सर्व दृश्य ब्रह्मात्म में कल्पित है वास्तव से नहीं। इसलिये सर्व को बाध करके आत्म ब्रह्म एक समझिये। अर्थात् अन्त से रहित सर्व का अधिष्ठान, ब्रह्म भूत भौतिक व कारण, कार्य से शून्य, पूर्ण नारायण, सर्व भेद से रहित, अखण्ड ब्रह्म स्वयं ज्योति है॥७॥

केवल सत्य स्वरूप, आकाश की नाईं पूर्ण, ब्रह्म माया आदि सर्व उपाधियों से मुक्त, अद्वैत, निष्क्रिय, सर्व कल्याण प्रदाता, सच्चिदानन्द है।

सर्व काल में सिद्ध (सत्य) और वास्तव से निर्गुण और निमित्त पाकर सगुण, आदि, मध्य, अन्त की कल्पना से रहित, गुणातीत, चैतन्य आत्मा है॥८॥

अद्वितीय (एक) ब्रह्म नानत्व कल्पना से शून्य, वास्तविक दृष्टि से सत्य स्वरूप, विश्व, अधिष्ठान, नित्य पूर्ण, सर्व जगत् की अवधि (अंत) ब्रह्मात्मा है अर्थात् नाम, रूप और सर्व व्यवहारों का आश्रय भूत, परमार्थ दृष्टि से सर्व भेद से रहित, मुक्त स्वरूप ब्रह्मात्मा है, इस अर्थ को सर्व वेद के मंत्र वर्णन करते हैं॥९॥

तद्विद्या विषयं ब्रह्मसत्यं ज्ञान सुखाद्वयम् । शांतं च तदतीतं च परं ब्रह्म तदुच्यते ॥१०
सद्रूपं परमं ब्रह्म त्रिपरिच्छेद वर्जितम् । तद्ब्रह्मानंदमद्वन्द्वं निर्गुणं सत्य चिद्घनम् ॥११
अस्तीत्युक्ते जगत्सर्वं सद्रूपं ब्रह्म तद्भवेत् । भातीत्युक्ते जगत्सर्वं भानं ब्रह्मैव केवलम् ॥१२
राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तपः । राम एव परं तत्त्वं श्रीरामो ब्रह्म तारकम् ॥१३
विद्याविद्यादि भेदेनभावाभावादि भेदतः । गुरुशिष्यादि भेदेन ब्रह्मैव प्रतिभासते ॥१४

गम्य ज्ञानकर ब्रह्मपद,सत चेतन सुखरूप । शांत अशांतहि ब्रह्मइक,अनुभव परमअनूप॥
रहित भेद त्रय ब्रह्मसत,ब्रह्मानंद अपार । द्वंद रहित अद्वैत वपु, निर्गुण वह चिदसार॥
हैता युत यह जगत सब, ब्रह्मरूप सत जान । भान होइ सब विश्वका, शुद्ध ब्रह्म सो ज्ञान॥
राम यही पर ब्रह्म लखि,राम तपों के धाम। परम तत्त्व है राम इक,ब्रह्म उबारत राम॥
भेदज्ञान अज्ञानकर, गुरु शिष्य जो भेद।भाव अभावहि भिन्न सब,भासित ब्रह्म अभेद॥

प्रश्न—ब्रह्मात्मा का यथार्थ ज्ञान विद्या से हो सकता है वा नहीं ?

उत्तर—महावाक्य का उपदेश रूप ब्रह्मविद्या के अभ्यास द्वारा आत्मज्ञान हो सकता है यह सम्प्रदाय क्रम है और वास्तव दृष्टि से ब्रह्मात्मा मन वाणि का अविषय (इससे जाना नहीं जाता) है अर्थात् ब्रह्म का विचार आवर्ण को दूर करता है और ब्रह्मात्म स्वयं प्रकाश रूप से स्फुर्ण (ज्ञात) होता है, इसको वृत्ति व्याप्ति कहते हैं ॥१०॥

सत्य स्वरूप परब्रह्म सजाति, विजाति, स्वगत भेदों से रहित केवल आनन्दमय स्वतः सिद्ध और सुख, दुःख आदि द्वंद धर्मों से अतीत (परे) तथा त्रय गुण (माया) से मुक्त एक रस चैतन्य है ॥११॥

संसार में अस्ति (हैता) सर्वत्र व्यापक है अर्थात् हर एक 'मैं हूँ' २ ऐसा जानते व मानते हैं इसलिये ब्रह्मात्म सर्वत्र पूर्ण सत्य स्वरूप है और भाति (एक रस ज्ञान) शुद्ध स्वरूप ब्रह्मात्म नित्य सिद्ध सर्व का अधिष्ठान चिदाकाश (व्यापक चैतन्य) अद्वैत सत्य है, इसमें सृष्टि का भेद कल्पित है॥१२॥

जो सब में भरपूर है वही परब्रह्म राम है सोई व्यापक राम परम तप (ज्ञान स्वरूप) है और राम ही परम तत्त्व सार व सर्व कल्याण की सीमा है ॥१३॥

विद्या व अविद्या और भाव, अभाव इत्यादि भेद से रहित और गुरु शिष्य आदि भेद कल्पना से अतीत मुक्त स्वरूप ब्रह्म ही अज्ञान वश सर्व जगत रूप होकर भासता है विद्वान ऐसा जानकर जीवन्मुक्त होते हैं ॥१४॥

देवार्चन विधि विभास (१४)

रक्षको विष्णुरित्यादि ब्रह्मा सृष्टेस्तु कारणम्। संहारे रुद्र इत्येवं सर्वं मिथ्येति निश्चिनु॥१
कच्चिद्वेत्सि महाबाहो देवःकःस्यादितिद्विज। न देवः पुंडरीकाक्षो न च देवस्त्रिलोचनः॥२
तद्देवदेव शब्देन कथ्यते तत्प्रपूजयेत्। तद्देवास्ति यतः सर्वं सत्तासत्तात्मरूपधृक्॥३
आत्म संविति रूपं तु त्यक्त्वा देवार्चनं जनाः।कृत्रिमार्चासुयेसक्ताश्चिरंक्लशं भजंतिते॥४

रक्षा विष्णू करें सब,विधि जग रचने हार।शंकर करें संहार जग,सब मिथ्या आकार॥
जानो द्विजवर देव वपु,जो अर्चनके योग।मुख्य देव नहि हरीहर अज मघवा किमहोग॥
अकृत्रिमअतिशयलखो,आनन्दहिकी राश।जीवसत्यता जगतलहि,परमपूज्यअविनाश॥
अर्चन आतम ज्ञान तजि,कृत्रिम देवहिपूज।काल अनंतहि क्लेशगहि,बालबुद्धि बेसूज।

प्रश्न—सर्व से उत्तम देव कौन है, जो सबको कल्याणप्रद है वह कहिये ?

उत्तर—सर्व जगत् का पालक (रक्षक) श्रीविष्णु जी, संसार रचने वाला ब्रह्माजी और सर्व का संहार करता सदाशिव तथा इनके सर्व व्यवहार आरोप दशा में कुछ माने भी जावें परन्तु ज्ञान दृष्टि से इन सर्व का अत्यन्ताभाव है, मुनीश्वर वसिष्ठ जी के पूछने पर साक्षात शंकरजी यह सर्व उपदेश (विभास) सुनाते हैं कि हे सर्वोत्तम द्विज ! क्या तुम यह नहीं जानते कि मुख्य देव जो विद्वानों के पूजने योग्य है वह कौन है ॥१॥

शंभु कहते हैं कि कमल नेत्र श्री विष्णुजी मुख्य देव नहीं, त्रिनेत्र जो मैं हूँ सो भी प्रधान देव नहीं, जगत सृष्टा ब्रह्माजी भी परम देव नहीं अर्थात् साकार मुख्य देव नहीं हो सकता किन्तु सगुण रूप अज्ञानियों का परिचय है, तुम सरीखे विज्ञान् निर्गुण, निराकार ब्रह्मात्म देव की पूजा करते हैं ॥२॥

हे मुनीश्वर ! सर्व से उत्तम स्वतः सिद्ध चैतन्य आनन्द ब्रह्म ही मुख्य देव है नित्य उसी का ज्ञानरूप पूजा करनी चाहिये क्योंकि सर्व जगत् उसीकी सत्ता कर स्थित है सर्व का प्रकाशक वह चैतन्य प्रधान देव है ॥३॥

आत्म ज्ञान रूप देवार्चनको त्यागकर कृत्रिम (कल्पी हुई) प्रतिमा की पूजा में जो नित्य लगे रहते हैं वह अपार समय तक कष्टों को भोगते हैं और आचार्य लोग हरि, हर की पूजा लोक संग्रह (अनजानों के चेतावने के लिये) करते, कराते हैं उनके निश्चय में साकार पूजा सत्य नहीं किन्तु आरोपित है ॥४॥

स एष देवः कथितो यः परः परमार्थतः । यस्त्वंसोऽहमशेषं वा जगदेव च योखिलः ॥५
तदेतत्पूजनं श्रेयस्तस्मात्सर्वमवाप्यते । तदेवसर्गभूः सर्वमिदंतस्मिन्व्यवस्थितम् ॥६
अकृत्रिममनाद्यंतमद्वितीयमखंडितम् । अबहि साधना साध्यं सुखं तस्मादवाप्यते ॥७
ब्रह्म ब्रह्मन्सदसतोर्मध्यंतद्देव उच्यते । परमात्म पराभिरव्यं तत्सदोमित्युदाहृतम् ॥८

स्वप्ननगर संकल्प गत,नहीं तहाँ कुछ सार।ब्रह्म आदि के लोक सब,चिदाकाश आधार॥
उत्तम पूजन देव चिद,सब सृष्टिहिऽधिष्ठान।मुख्य पूज्य कल्यान प्रद,प्राप्त श्रेय सो जान॥
अनादि चेतन स्वतः वपु,अनंत अद्वैरूप।भेद रहित निर्लक्ष्य चिद,आतम मिले अनूप॥
भाव अभावहि अंतरहि,सबसाक्षी चिद देव।सब देवों के मध्य सत,परमातम लहि भेव॥

प्रश्न–सृष्टि भर में अनेक लोग अपने-अपने भिन्न देव (पूज्य) मानते और उनसे अपने-अपने मनोवांछित फलों को प्राप्त होते हैं, तुम एक चैतन्य को ही मुख्य देव वर्णन करते हो, यह कहाँ तक ठीक है ?

उत्तर–यद्यपि अधिकारी भेद से अनेक देवी, देवता अपने-अपने संस्कारों के अनुसार मान करके लोग विशेष पूजा व अर्चा करते हैं परन्तु सृष्टि में जितने बड़े, छोटे पदार्थ हैं सो वास्तव से एक चिदाकाश स्वरूप हैं, वह चैतन्य एक मुख्य सत्यरूप देव है इसलिये मैंने (सदाशिव ने) तुम्हारे परमहित (कल्याण) के लिये चैतन्य देव ही मुख्य वर्णन किया है, इस देव से भिन्न सर्व रचना स्वप्न सृष्टि के तुल्य प्रतीति मात्र है, उसकर प्राप्त हुआ फल भी वैसा ही होगा ॥१॥

ईश्वर बोले कि हे मुने ! यह सम्पूर्ण दृश्यमान जगत् वास्तव से केवल परमात्म स्वरूप है वही परमात्म देव चैतन्य स्वरूप सर्व दृश्य से परे सत्यरूप प्रधान देव अपना इष्ट मानना चाहिये, इस कर प्राप्त हुआ फल भी सत्य होगा ॥२॥

अकृत्रिम (स्वतः सिद्ध) अनादि, अनंत व अखण्ड सो बाह्य साधनों कर असिद्ध, सर्वात्म देव, सुखपूर्वक अपने आप कर प्रकाशमान (स्वयं ज्योति) परम देव जानना चाहिये, मैं सब सत्य-सत्य कह रहा हूँ ॥३॥

ईश्वर कहते हैं कि हे द्विजोत्तम ! भाव व अभाव आदि सर्व, भेद कल्पना से रहित सर्व के अन्तर साक्षी आत्म ही मुख्य देव जानो । सूर्य चन्द्रमा आदि का सिद्ध करता परम चैतन्य सर्व अधिष्ठान ब्रह्म देव ही सर्वोत्तम ज्ञान करके पूजने योग्य है ॥ ४॥

न स दूरस्थितो ब्रह्मन्न दुष्प्राप्यसकस्यचित् । संस्थितः स सदा देहे सर्वत्रैव च रवे तथा ॥९
संकल्पिता प्रबोधेन जाड्या विश्व प्रबोधिनी । शबलं रूपमासाद्य संकल्पाद्यात्मनारतम् ॥१०
शेतेनारायणोऽम्बुधौ ध्यानी ब्रह्म पुरेऽब्जजः । कांता गतो हरः शैले स्वर्गे सुखरो हरि ॥११
चिचिनोति यथात्मानं येन यत्र यदायदा । तत्तथानुभवत्यं बुस्पंदा द्वीच्यादितां यथा ॥१२

दूर देव अप्राप्य नहि, सर्वत्रहि भरपूर । देह आदि आकाश लग, सभी आत्मजगपूर ॥
चिद माया अज्ञान से, सबल रचित संसार । जीव जगत विस्तार कर, जन्मे बारम्बार ॥
हरि अज मघवा शुक शिव, सभी लखो चिद्रूप ।समप्रलोकहिवही चिद, पूरण सभीअनूप ॥
जीवहि निज अज्ञानवश, जैसी वासना होइ । तैसे सबहीं रूप धर, बार तरंगहि जोइ ॥

प्रश्न–चैतन्य देव निराकार, निर्गुण है, उसकी पूजा कैसे हो सकती है ?

उत्तर–हे ब्राह्मण ! वह चैतन्य देव दूर स्थित नहीं और न किसी को अप्राप्त है, वह सर्व को धारण करनेवाला सम्पूर्ण का साक्षी सब में अनुस्यूत (पूर्ण) है, वही प्राणों मन आदि सर्व क्रियायों का प्रेरक है अर्थात् कोटि सूर्य के प्रचण्ड तेज से भी अधिक प्रकाशवान सदा विद्यमान है, उसको अल्प दृष्टि (अज्ञानी) लोग दुःख से प्राप्त होनेवाला और दूर मानते हैं, वास्तव में आत्मा न दूर है और न उसका जानना कठिन है किंतु अपना स्वरूप स्वयं प्रकाश नित्य अपरोक्ष है ॥९॥

ब्रह्मरूप चैतन्यसत्ता व्यवहार दशा में माया सबल (ईश्वर) रूप को धारण करके पुनः जीव को कल्पती है । अर्थात् वही चैतन्यसत्ता अपने अज्ञान से अल्पज्ञ बनके इस जगत् में भोक्ता होकर दुःखों को सहन करनेवाली प्रतीत होती है ॥१०॥

वही चिदसत्ता श्रीविष्णु रूप जलशायी और उनके नाभ कमल से ब्रह्मारूप को तथा पार्वती सहित कैलाश निवासी सदाशिव रूप को धारण करती है और स्वर्ग में इन्द्र आदि देवता रूप को प्राप्त होती है अर्थात् सर्व देवताओं का सार शुद्ध चैतन्य देव है ॥११॥

चिदसत्ता ही जैसे-जैसे भाव (संस्कारों) से मिलती है वही रूप होकर भासने लग जाती है वास्तव में यह सर्व रचना स्वप्न सृष्टि के तुल्य मिथ्या (कल्पित) रूप है, उसकी संज्ञा व्यवहार के लिये अनेक होती हैं अर्थात् वही चैतन्य देव सर्वत्र पूर्ण स्थित है उसी को वेद, वेदान्त मुख्य देव करके वर्णन करते हैं ॥१२॥

नाना नाना न चप्यं तरणाविवसुमेरवः। न च शब्दार्थ शब्द श्रीमहोषर लता यथा॥१३॥
निर्विकल्पाद्वितीया चिद्यासौसकल गासती।परमैकापरा साच्छादीपिकातेजसामपि॥१४॥
सापरैव चिदत्यच्छ चिंतामायाति चेतनात्।साधुरेव यथासाधुभाविते दुर्जनैषणाः॥१५॥
अद्वितीयादधानेदं विकारादि विवर्जितम्। तास्तमेति न चोदेति स्पंदते नोनं वर्द्धते॥१६॥

भेद जीव संसार सब चिद्री रंच नहि आन। तरु ऊषर गत मेरुअणु नाम रूपसभजान॥
शुद्ध भावना रूपचिद्, निर्धर्मक इक सूत। निर्मल चैतन भाव से,प्राप्त सभी अनुसूत॥
अनिष्ट इष्टहि दुःखसुख,जभी देह अभिमान।दुर्जन संगति पायजिम,होइसाधुखलजान॥
उदय अस्त सम्पूर्ण जग,निर्विकार चिदएक। बढ़त घटत नहिं वस्तुसे,कूट तुल्य धर टेक॥

प्रश्न—संसार में अनेक प्रकार के भेद और ऊँच, नीच व्यवहार सदैव प्रत्यक्ष प्रतीत होते हैं, इन सर्व को असत्य कैसे मान लिया जावे ?

उत्तर—सर्व पदार्थों व जीवों में अनेक भेद व भूत, भौतिक और जड़, चैतन्य यह भिन्न-भिन्न भासते हैं, वह सम्पूर्ण ऐसे असत्य हैं जैसे ऊषर भूमि में लता नहीं हो सकती है, अर्थात् विचार करके माया का कार्य सर्व नाम, रूप और आकार स्वप्न की नाईं अनहुये भासते हैं ॥१३॥

चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म मैं हूँ, इस ज्ञान द्वारा निर्विकल्प (अद्वैत) भावना से सर्व में पूर्ण एक (सर्वव्यापक) परम शुद्ध सूर्य आदि सर्व ज्योतियों का सदैव प्रकाशक जो चैतन्य सत्ता है वही संसार में सत्य स्वरूप है, और आकार मिथ्या है ॥१४॥

आत्मा अत्यन्त स्वच्छ (माया मल से रहित) चिदानन्द सत्ता को भूल करके मिथ्या देह आदि में सत्य भावना व वृथा अहंकार करके अपने को सुखदाई भासने वाले स्त्री, पुत्र और द्रव्य आदि पदार्थों में आसक्ति और दुःखप्रद सर्प, सिंह आदि से दूर रहती है और संग कर वैसे की नाईं हो भासती है जैसे बहुत काल दुर्जनों की संगति करके साधु खोटे स्वभाव धारण करने लगता है ॥१५॥

अद्वैत स्वरूप ब्रह्मसत्ता वास्तव में सर्व विकारों से अतीत (परे) और आरोप (व्यवहार) करके उसमें अहं, मम (आसक्ति) कर बन्धती है। परन्तु ज्ञान दशा में सदा असंग, निर्दोष रूप आत्म सत्ता सदैव सत्य धर्मणी विद्यमान होती है ॥१६॥

शर्व सक्ति हि तद्ब्रह्म सदेकं विद्यते यदा। तदा निर्मूल एवायं द्वित्वैकत्व कलोदयः॥१७
एवंरूप पदातीतं यद्रूपं परमात्मनः। यत्तु नामाहममलं विषयो न गिरां च तत् ॥१८
स्वसंकल्पन कालुष्यं विनिवार्यात्म नात्मनः। परं प्रसादमासाद्य परमानंद वान् भव ॥१९
एवं ह्यसंभवदिदंत्व विरागभास्वत्तत्सन्वमुत्तम पदं परमेकदेवः।
पूजासु पुजक सु पूजन पूज्य रूपं किंचिन्न किंचिदिव चित्त पदैक मूर्तिः ॥२०॥

ब्रह्मविहारक दृष्टिसे,सर्व शक्ति कहलाय। वास्तव दृष्टीरूप सत,कल्पित सभी विलाय॥
नामरूप से परेवह आत्म निर्मल चीन। वाणी मनका विषयनहिं,सत्य एक शिवबीन॥
संकल्पहि ध्येय वासना,शुद्ध ज्ञान से दूर। शोकहि संशय भूल तजि,निजानंद भरपूर॥
कृत्रिम पूजा त्रिपुटि युत,तुच्छ फलहि अनुयोग। अभेद पूजा देव की,वही तुम्हारे योग॥

प्रश्न—विद्वान् व्यवहार काल में क्या अज्ञानियों के तुल्य होते हैं ?

उत्तर—सदा शिव बोले कि हे मुने! ब्रह्म वेत्ता भी व्यवहार दशा में भेद जानते हुए सर्व बर्ताव करते हैं। परन्तु परमार्थ (वास्तव दृष्टि) से सर्व शक्ति (अधिष्ठान) ब्रह्म केवल चैतन्य स्वरूप है और एक, दो की कल्पना अज्ञानी वृथा करते हैं क्योंकि जब दो होते हैं तो एक की कल्पना की जाती है तैसे ही एक की दृष्टि से दो माने जाते हैं यथार्थ दृष्टि से एक, दो को बाधकर शुद्ध चिद्रूप है चैतन्य से भिन्न एक दो शब्द असत्य हैं ॥१७॥

नाम, रूप से भिन्न (परे) शुद्ध परमात्मा है वह मन वाणि का विषय नहीं और जितना जगत् दीखता है सो वास्तव से चिद्स्वरूप है जैसे लता, पुष्प व फूल आदि सर्व वृक्ष रूप हैं तैसे ही सर्व प्रपंच ब्रह्म चैतन्य से भिन्न, सत्य नहीं है ॥१८॥

ज्ञान द्वारा अपने हृदय के तमको दूर करके एक ब्रह्म दृष्टि से परमानन्द स्वरूप में सदैव सावधान होना यही निर्वाण पद है ॥१९॥

प्रधानरूप देवार्चन (ब्रह्म पूजा) को त्याग करके सत्य पुरुष (विद्वानों) के लिये भेदरूप साकार पूजा कभी योग्य नहीं क्योंकि बाह्य पूजा अल्प बुद्धि और फल चाहने वाले मनुष्य करते हैं अर्थात् वेद, शास्त्रों में अज्ञानियों के लिये भेद रूप सगुण पूजा (अर्चा) विधान की है और ज्ञानमय अभेद पूजा की अपेक्षा भेद पूजा व तिसकी सामग्री अति तुच्छ है अर्थात् सर्व पूजाओं का सार आत्मसत्ता सर्व प्राणियों को निर्गुण चैतन्य मुख्य देव नित्य प्राप्त है ॥२०॥

इत्थंस्थितमिदं विश्वं सदसद्व रूपि च। द्वैतैक्य पद निर्मुक्तं युक्तं द्वैतैक्यमप्यतः॥२१
सब निरुपमं शांतं मनसै तन्निमार्ग गम्। ब्रह्मेदंबृंहितं ब्रह्म शक्त्याकाश विकासया॥२२
कालताकाशते त्यक्त्वासकले सकलाकला॥न जड़ाना जड़ा स्फराधत्तेसत्तामनामिकाम्॥२३
समस्तं सुशिवं शांतमतीतं वाग्विलासतः॥ओमित्यस्य च तन्मात्रा तुर्यासा परमागतिः॥२४

भेदहि पूजा बाध कर, शेष पूज्य सतदेव। द्वैत एकसे रहित वपु, करो उसी के सेव॥
विश्व वास्तवहि ब्रह्मवपु,माया शक्ती धार। त्रिक त्रिपुटी जो होइ सब,मनमाया विस्तार॥
देशकाल सबकर्म तजि,होइ असज्जड़नाहिं। शब्दजालकाविषयनहि,व्यापकचेतनआहि॥
लखु मिथ्या सब जगतको, ब्रह्मशांत शिवरूप। मात्रा तीनों से परे, सोई तुर्य स्वरूप॥

प्रश्न–कल्पित भेद होने से क्या स्वरूप में कुछ अवनति नहीं होती ?

उत्तर–जैसे कल्पित सर्प के डसने से कोई मरता नहीं तैसे ही सर्व संसार बाध योग्य (असत्य) है, सर्व का अधिष्ठान वास्तविक स्वरूप अद्वैत परम चैतन्य देव विराजमान है, यह सर्व भेद पूजा भी इसके अंतर स्थित है, यथार्थ दृष्टि से वह चिदसत्ता एकता व द्वैतता आदि शब्दों से परे है और सर्व रूप भी वही हो भासती है ॥२१॥

परमार्थ से यह सम्पूर्ण जगत् अनुपम (निशब्द) और आकाश के तुल्य व्यापक (पूर्ण) ब्रह्म है और आरोप दशा में जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति व उत्पति, स्थित, लय अथवा अध्यात्म, अधिदैव, अधिभूत इत्यादि मार्गों से प्रवृत हुई है परन्तु यह सर्व विलास माया में हैं, शुद्ध ब्रह्म में नहीं, यह सर्व वेद, वेदान्त का सार सिद्धान्त है ॥२२॥

नाम, रूप और व्यवहारों को मिथ्या जान करके जड़, चैतन्य आदि शब्दों से अतीत तथा अविषयरूप विस्तृत (व्यापक) सत्ता सर्व को धारण करती हुई भी चैतन्य संचित नित्य असंग (मुक्त) है ॥२३॥

यह सर्व जगत् परमार्थ से शांत, शिवस्वरूप व मन, वाणी का अगोचर (अविषय) है, उसी ॐ (तुर्यपद) से विराट आदि तीनों मात्रों के भेद हुये हैं वास्तव से अद्वैत व एक सब चिद्रूप है, वह सत्ता तू है उस सत्ता में वास्तव से कुछ भेद नहीं है। सब में व्यापक एक चैतन्यमय आत्मसत्ता का ज्ञान ही परम पूजा और ध्यान समझो और भेद (आकार पूजा) अबोधों की है, तुम्हारे योग्य नहीं ॥२४॥

चेतनं चेतनौघानां चेत्नात्मनि चेतनम् । स्वं चेत्य चेतनं चेत्य परमं भूरि भावनम्॥२५॥
द्रव्यमप्येष निर्द्रव्योनिर्द्रव्योपिहि द्रव्यवान् । अकायोपिमहाकायो महाकायोप्यकायवान्॥
यस्मिन्सर्वंयतःसर्वंयःसर्वं सर्वतश्चयः । यश्च सर्वमयो नित्यं तस्मै सर्वात्मने नमः ॥२७॥
शिवस्यानंतरूपस्य एषाचिन्मात्रितात्मनः। एषाहि शक्तिरित्युक्तातस्माद्भिन्नामनागपि॥२८

वृत्तिप्रकाशकबुद्धिका, सार सभी चिद रूप । साक्षी आतम सर्वका, चेतन दृश्यस्वरूप॥
अधिष्ठानसवद्रव्ययुत, धर्मरहितपुनि सोइ । बिना देह सब देहधर, सबअतीतफिर होइ॥
जिसमें जिसकर जगत यह, सर्वरूप सब ओर। वह सर्वातम रूपचिद्,नित्यनमो है मोर॥
चित्त परमातमशक्तिशिव, मायारूपकहाय।व्यवहारिक बहु भेदलखु वास्तवभेदविलाय॥

प्रश्न—माया के संग होने से चितसत्ता की कुछ हानि होती है वा नहीं ?

उत्तर—चैतन्य देव वास्तव में माया के संग से अतीत है, किंतु वह माया व सर्व वृत्तियों का प्रकाशक सदा असंग है, अर्थात् आकाश के सदृश सर्व पदार्थों के भीतर व बाहिर एक रस पूर्ण सर्व को सिद्ध करता माया का अधिष्ठान चैतन्य देव है, वही देव विद्वानों को सदा ध्यान (अभ्यास) करने योग्य है ॥२५॥

सब का आधार होने से वास्तव से सर्व रूप है और ज्ञान दृष्टि से द्रव्य रहित हुआ भी व्यवहार में द्रव्य वाला प्रतीत होता है । तथा ज्ञान दृष्टि से शरीर आदि उपाधियों से रहित हुआ भी सर्व शरीरों को वही धारण करता है, सर्व का अधिष्ठान (वास्तव स्वरूप) होने से और महान शरीर धारी हुआ भी वास्तविक शरीर आदि से मुक्त है ॥२६॥

जिसमें सर्व है, जिससे सब है, जो सर्व रूप है, तथा सब ओर पूर्ण है अर्थात् सब का अपना वास्तव स्वरूप वह चिदात्मा हमारे से सदा नमस्कार के योग्य है ॥२७॥

महेश्वर बोले कि हे मुने ! शिव (परमात्मा) की अनंता ही सर्व शक्ति-रूप जानों अर्थात् महामाया उस देव की शक्ति कहनी चाहिये परन्तु परमात्मदेव में किंचित् भी भेद कल्पना नहीं है, भेद आदि वृत्तियाँ अज्ञान कर के भासती हैं और ब्रह्मज्ञान के होने पर शुद्ध चैतन्य देव एक असंग, निर्विकार स्वरूप है, उस देव की ज्ञानमयी पूजा की हुई सर्व सिद्धियों व मुक्ति की प्रदाता है ॥२८॥

एषदेवः स परमः पूज्य एष सदा सताम् । चिन्मात्र मनुभूयात्मा सर्वगः सर्व संश्रयः ॥२९
बहिरंतश्च सर्वात्मा सदा स्वात्मासुबुद्धिभिः । विविधेन क्रमेणेष भगवान्परि पूज्यते ॥३०
शिवो हरो हरिर्ब्रह्माशक्रो वैश्रवणोयमः । अनंतैक पदाधार सत्ता मात्रैक विग्रहः ॥३१
सर्वतो मननातीतं सर्वतः परमं शिवम् । सर्वज्ञ सर्व कर्त्तारं सर्व संकल्पितार्थदम् ॥३२

साक्षी नाटक नियम सब, वही चिदात्म देव । सर्व पूर्ण आधार जग, विज्ञ जनोंका देव॥
बाहिर भीतर रम रहा, भगवत आतम रूप । पूजें सज्जन ज्ञानकर नित्य वही चिदभूप॥
ब्रह्मा विष्णु इन्द्र शिव, यम कुबेर आधार । नाम रूप को बाधकर, एक लक्ष्य चिदसार॥
मन बुद्धि से परे लखु,रूप परम कल्याण । विवर्तकारण सभी का, मूल सत्य चिदज्ञान॥

प्रश्न—चैतन्य देव की यथार्थ पूजा का स्पष्ट रूप से वर्णन कीजिये ।

उत्तर—यह सर्वोत्तम चैतन्य देव श्रेष्ठ महात्माओं कर सदा पूजने योग्य है, सर्व वृत्तियों का साक्षी चिदात्मा देव है सोई चिन्मात्र सत्ता सर्वत्र पूर्ण है, वह ज्ञान रूप पुष्पों करके पूजने योग्य है अर्थात् विचार, अभ्यास आदिकर उस सत्ता को यथार्थ जानना यह उस प्रधान रूप देव की पूजा कही है ॥२९॥

बाहर, भीतर सर्व में स्थित सर्वात्मा (भगवान) ही मुख्यदेव विद्वानों की एकतामयी ज्ञान बुद्धि से नित्य पूजने योग्य है, उससे भिन्न भेद रूप साकार पूजा अज्ञानियों के लिये शास्त्रों ने परिचय बताया है और ज्ञान-वान वैराग्य, उपरति, ज्ञानरूप पुष्पों से मुख्यदेव की पूजा करते हैं । यही पूजा वेदों का सार है ॥३०॥

वह चैतन्य प्रधान रूप सत्ता आरोपदशा में शिव, विष्णु, ब्रह्मा, गणेश, इन्द्र, यम, शक्ति, सूर्य, चन्द्रमा आदि रूपवान भासती है परन्तु बाह्य दृष्टि से इन भेदों के प्रतीत होते भी वास्तव से सर्व भेद कल्पना से अतीत, अनंत ब्रह्मांडों (सृष्टियों) का आधार, एक चैतन्य रूप मुख्य देव है अर्थात् ज्ञान दृष्टि से उस में भेद नहीं है । इसलिये सर्व का वास्तवरूप अधिष्ठान अनुभव सत्ता प्रधान देव कहाता है, उसकी ज्ञानमयी पूजा उत्तम है ॥३१॥

मन, बुद्धि और तिनके धर्मों (व्यवहारों) से अतीत, सम्पूर्ण व्यापक, परम कल्याण स्वरूप, सर्व का कर्त्ता (अधिष्ठान) मुख्य देव है । अर्थात् सर्व अनात्म पदार्थों का आश्रय भूत, ऐसे अद्वितीय परमात्मा का ज्ञान आदिकर सदैव पूजन करना चाहिये इस अन्तरीय धारणा करके विद्वान् केवल निर्वाण पद को प्राप्त होता है ॥३२॥

सम्यक्संविदितांगौघंभावाभावनभावितम्।आभासभास्वरंभूरि सर्वगंचिंतयेच्छिवम्॥३३
न तृप्तिंनक्षुधंयातिनाभिवांछति नोज्झति। समः समसमाचारः समाभासःसमाकृतिः॥३४
ईहितानीहितोघेन युक्तायुक्त मयात्मना। त्यक्तेनात्तेनचार्थेन ह्यर्थानामीशमर्चयेत् ॥३५
अयं सोहमयं नाहं विभागमितिसंत्यजेत। सर्वंब्रह्मेतिनिश्चित्य नित्यात्मार्चाव्रतंचरेत्॥३६

सर्व प्रकाशक विश्वगत,भावअभावनज्ञात। सभी प्रकाशकज्योतिरवि चिंतनीयसबतात॥
क्षुधातृप्ति नहि ग्रहणतजि, बाह्यांतर समजान। इकरसपूरणब्रह्मचिद,स्वयंज्योतिपहिचान
इष्ट सुयोग पदार्थ गहि,कर अनिष्ट का त्याग। कर्त्ता भुक्ता सभी जग, आत्मपूज अनुराग
यह मैं हूँ सो मैं नहीं, भेद बुद्धि सब बाध। सर्व ब्रह्म कर भावना, ज्ञान देव आराध॥

प्रश्न–उस मुख्य देव की पूजा व स्वरूप विस्तार से सुनना चाहता हूँ।

उत्तर–सम्पूर्ण सृष्टि व तिनके अंगों (अवयवों) का प्रकाशक और प्रिय, अप्रिय पदार्थों की भावना आदि को सिद्ध करता और सर्व चित्त वृत्तियों व सूर्य आदि प्रकाशों में व्यापक, स्वयं ज्योति, उस आत्मदेव का अद्वैत दृष्टि (बोध) शम (वासना का त्याग) और साम्य (समदृष्टि) रूप पुष्पों से सदैव पूजन करना चाहिये ॥३३॥

वह मुख्य देव कभी क्षुधा, तृषा कर व्यथित (पीड़ित) नहीं होता, वह न किसी वस्तु को चाहता और न त्याग ही करता है, अन्तरात्म सर्वत्र पूर्ण और बाह्य जीवनमुक्तों के तुल्य व्यवहारी प्रतीत हुआ भी केवल प्रकाशरूप स्वमहिमा में स्थित है। अस्ति भांति, प्रिय रूप से समान (सर्वत्र व्यापक) मुख्य देव का ज्ञान ही पूजन है ॥३४॥

इष्ट पदार्थों का ग्रहण करते व अनिष्ट पदार्थों को त्याग करते भी सर्व के भोक्ता (आश्रय भूत) चैतन्य रूप आत्म देव की ज्ञानमयी पूजा करना सार है, बाह्य दृष्टि से यथा योग्य बर्ताव करो अर्थात् यथा प्राप्त व्यवहारों में स्थित होवो और अनुभव दृष्टि से स्वयं ज्योति, निर्विकार, ब्रह्मात्म देव की ऐक्य ज्ञान रूप पूजा करो, बाह्य साकार पूजा करने से जन्म, मरण दूर नहीं हो सकते किंतु हृदय एकाग्र होता है तिसके पीछे शीघ्र कैवल्य पद में विश्राम पाता है ॥३५॥

यह मैं हूँ और यह मैं नहीं, इस भेद बुद्धि को विचार से त्याग कर सर्व ब्रह्म का बोध करना मुख्य पूजा है अर्थात् सर्व जगत वृक्ष को ज्ञानरूप शस्त्र से काट (बाध) करके अद्वैत चिदात्मा का ध्यान रूप पूजन सर्वोत्तम कल्याण का द्वार है, यही सर्व वेद वेदान्त का सिद्धान्त है ॥३६॥

न बांछता न त्यजतादेव प्राप्ताः स्वभावतः। सरितः सागरेणेव भोक्तव्याभोगभूमयः॥३७
समताकाश वद्भूत्वायत्तुस्याल्लीनमानसम् । अविकारमनाया संत देवार्चन मुच्यते॥३८
देशकाल परिच्छिन्नो येषांस्यात्परमेश्वरः।अस्माकमुपदेश्यास्ते न विपश्चिद्विपश्चिताम्॥३९
यथा कालं यथारंभं न करोषि करोषियत् । चिन्मात्रस्य शिवस्यातस्तदेवार्चनमात्मनः॥४०

इच्छ अनिच्छात्यागिके,तुल्यदुःखसुखमान । कर्ता भुक्ता सभीतुम, वारिधि नदी समान॥
समता इकता ब्रह्मलखु,ज्यों नभ स्वच्छ विशाल।निर्विकार निजबाध मन,पूजादेवरसाल॥
देश काल युत देव लखु, कर अर्चन आकार। मेरी शिक्षा योग्य नहिं, बाह्य मुख्यताधार॥
यथा काल प्रारब्ध से, करो कर्म निष्काम। चेतन बुद्धी धार शिव ज्ञान अर्च अभिराम॥

प्रश्न—मुख्य देव की पूजा करने वाले ज्ञानियों के लक्षण तथा प्रवर्तन कहिये।

उत्तर—ज्ञानी स्वरूप दृष्टि (ज्ञान) से न किसीका त्याग करते और न ग्रहण करते हैं परन्तु व्यवहार काल में ब्रह्मवेत्ता को भी यथा प्राप्त सुख, दुःख व हानि, लाभ में यथोचित बर्ताव करना चाहिये अर्थात् इष्टानिष्टभोगों में असंग रहना उचित है, जैसे समुद्र सर्व नदियोंके जलों को धारण करता भी क्षोभ को प्राप्त नहीं होता तैसे ज्ञानवान यथाप्राप्त व्यवहारों में वर्तता हुआ भी स्वरूप निश्चय से कभी चलायमान नहीं होता। जैसे आकाश सूर्य की तप्त व जाड़े की शीतलता से असंग रहता है तैसे ही विद्वानों को यथाप्राप्ति में असंग निश्चय करना चाहिये ॥३७॥

जैसे घटाकाश महाकाश रूप है। ऐसे ही सर्वभूत, भौतिक जगत् को एक ब्रह्म जान करके मन का स्वरूप जो चंचलता है उससे अतीत अविकारी और निष्क्रिय अपने को जान करके अद्वैत आत्मनिष्ठा करनी यही उस देव की अर्चा (पूजा) है ॥३८॥

जो देश काल, वस्तु के भेद सहित पूजा करते हैं वह लोग हमारी शिक्षा (उपदेश) के पात्र नहीं; इसलिये हे मुने! तुम भेद पूजा के कर्त्ता व उनकी दृष्टि दोनों को त्यागकर व्यापक निर्गुण अभेद पूजा करो अर्थात् निर्दुःख व शांत और वीतराग होकर शुद्ध निश्चय से सुख दुःख आदि को भोगते हुए नित्य आत्मा की एकता रूप पूजा करो ॥३९॥

पुनः सदा शिव बोले कि हे मुनीश्वर! यथा प्रारब्ध देशकाल के अनुसार योग्य व्यवहारों को करते हुए चैतन्यरूप शिवात्मा का अन्तरीय ज्ञानमय पूजन सदा करो अर्थात् निराकार, निर्गुण, सर्वात्मा परमदेव का बोध रूप पूजन करने पर परमानन्द रूप कैवल्य मुक्ति अवश्य प्राप्त होती है ॥४०॥

ब्रह्मात्म विशेषण विभास (१५)

ॐशक्त्यात्मकःसर्वत्रावस्थितःस्वयंज्योतिः। शुद्धोनित्योनिरञ्जनःशांततमःप्रकाशयति॥१
एषशुद्धःपूतः शून्यः शान्तोऽप्राणोऽनीशात्मानन्तोऽव्ययः स्थिरःशाश्वतोऽजःस्वतन्त्रः॥२
सर्वानुभव निर्मुक्तः सर्व ध्यान विवर्जितः। सर्व वर्जित चिन्मात्र सर्वानन्द मयः परः॥३
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षीचेताकेवलोनिर्गुणश्च।
सर्वसंकल्प रहितः सर्वनादमयः शिवः॥४॥

शक्ति प्रकाशहि सर्वगत, चेतनवपु शुधजान। अविनाशीमायारहित,शांत ध्वंस अज्ञान॥
पावन निर्मलशून्यवपु, शांत प्राण बिन ईश। निर्विकारकूटस्थनित,स्वतंत्रअजजगदीश॥
अतीत चेतनमात्र जग, सबसे परे अनन्द। स्वरूप अक्रियज्ञानमय, ध्यानरहितसुखकन्द॥
सब व्यापक दे कर्म फल,साक्षीचेतन मान। अगुणअशब्दनिराश पद, लखो रूपकल्यान॥

प्रश्न—जिस कर ज्ञान की दृढ़ता हो उस साधन को विशेषतया प्रकाशित करिये।

उत्तर—वेद भगवान ने ॐ को सर्वोत्तम लिखा है वही चैतन्य शक्तिवान् सर्व व्यापक स्वयं प्रकाश, माया मल से रहित, राग द्वेष से अतीत, शान्त स्वरूप, अज्ञान का भी प्रकाशक है॥१॥

सर्व विकारों से मुक्त और जगत् के फुरने से रहित, परम पवित्र चैतन्य स्वरूप, अनंत (नाश रहित), और सर्व विकारों से परे, अनादि, अजन्मा, सर्व भेद कलंकों से मुक्त, परि पूर्ण ब्रह्म है, सोई चैतन्य ॐ उपासना करके जानने योग्य है॥२॥

सर्व संसार का प्रकाशक, सम्पूर्ण धर्मों से विलक्षण, समस्त वृत्तियोंका अविषय, सभी दृश्य से अतीत, चैतन्य, आनन्द स्वरूप ब्रह्मात्मा है॥३॥

सर्व चेष्टाओं का आधार भूत अर्थात् अस्ति, भाति, प्रिय रूप सर्व जगत् को सत्ता व चैतन्य देने वाला और आनन्दित करने वाला और भूतभौतिक पदार्थों में रमा हुआ, सर्व का साक्षी चिद्रूप तथा तीनों गुणों से अतीत, अद्वैत व सर्व संकल्पों से परे और सर्व शब्दार्थों का आधार (आश्रय), कल्याणमय आत्म तत्त्व ही ब्रह्म है। सर्व कथन का भाव यह है कि जगत् के जितने धर्म व स्वभाव हैं उन से विलक्षण और नाम, रूप क्रिया को सिद्ध करने वाला स्वयंज्योति आत्म सर्व शब्दों से अतीत है परन्तु ज्ञान की दृढ़ता के लिये अभ्यास करने के योग्य उचित विशेषणों का विचार कोमल ज्ञानियों को अवश्य करना चाहिये अर्थात् जो विचार (अभ्यास) किये बिना पहले ही सिद्ध बनते हैं वह सारार्थ से विलग रहते हैं॥४॥

आत्मानात्म विवेकादि भेदाभेद विवर्जितः। महावाक्यार्थतो दूरोब्रह्मास्मीत्यति दूरतः॥
अखंडैक रसो वाहमानन्दोऽस्मिति वर्जितः। दृश्य दर्शन निर्मुक्तः केवलामल रूपवान्॥६
ननिरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः। न मुमुक्षुर्न वैमुक्त इत्येषा परमार्थता॥७॥
योवैभूमातदमृतमृनेतिनेतिनह्येतस्मादिति।नेत्यन्यत्परमस्त्यथनामधेयञ्चसत्यस्यसत्यमिति

आत्म अनातम ज्ञानबिन, नाहीं भेद अभेद। महावाक्य से परे वह, अहं ब्रह्म नहि वेद॥
निर्विकार पुनि भेद तज, परमानन्द अतीत। दृश्य रुदर्शन मुक्त लखु,शुद्ध अमल है मीत॥
नहि निरोध तिसमें उदय,बंध साध नहि कोइ। नाहि मुमुक्षु मुक्त पुनः,परमारथ यह जोइ॥
व्यापक सोई अमर सत,नाम रूप पर जान। शब्द अर्थसे भिन्न लखु,सत्यों का सत मान॥

प्रश्न—ब्रह्मपद को लखाने के लिये और विशेषण स्पष्ट कहिये।

उत्तर—आत्म, अनात्म इन दोनों के विचार से परे व भेद, अभेद कल्पना से रहित और महावाक्यों के अर्थों से भिन्न ब्रह्म अलक्ष्य स्वरूप है उस के प्रबोध करने के लिये अरोपित सृष्टि कह कर अपवाद दशा में विशेषणों का विचार व ध्यान किया जाता है॥५॥

एक ब्रह्म सजाति, विजाति, स्वागत तीनों भेदों से अतीत, अव्यय (एक रस)ब्रह्मानन्द स्वरूप है, वास्तव में इस वृत्ति ज्ञान से परे और दृष्टा, दर्शन, दृश्य आदि सब त्रिपुटियों से रहित जो केवल शुद्ध चैतनमात्र तत्व है उसमें बन्ध मोक्ष की कल्पना अल्प जानकार करते हैं॥६॥

सर्व शब्दों से परे, निर्धर्मक रूप ब्रह्मतत्त्व में मन आदि का निरोध और सृष्टि की उत्पत्ति आदि विकार व संसार में रागी मनुष्य तथा मुमुक्षु, और बन्ध, मुक्ति आदि कोई भी पदार्थ वास्तव से सत्य नहीं हैं, किन्तु सर्व शब्दों व अर्थों की भेद कल्पना अज्ञान काल तक मानी जाती है॥७॥

व्यापक रूप जो ब्रह्मात्मा है, आनन्द स्वरूप एकरस और नाश से रहित तथा नाम, रूप क्रिया आदि व्यवहारों से अतीत तथा सर्व शब्दों व अर्थों से परे है, और परस्पर अपेक्षा वाले मायिक शब्द व सम्पूर्ण विकारों से अतीत, एक रस व्यापक जो सामान्य सत्ता है, वह परमात्मा सत्य स्वरूप है, ऐसे परम तत्त्व को यथार्थ धारणा द्वारा प्राप्त होकर विद्वान् सांसारिक सब कष्टों से मुक्त हो कृतार्थ होता है॥८॥

तज्ज्योतिरेकमद्वितीयं सर्वं कल्पनातीतम्।ध्रुवमक्षरमेकं सदा चकास्तिसच्चिदानन्दम्॥९
सदैवसौम्येदमग्रआसीदेकमेवाद्वितीयम्।नित्यं शुद्धंबुद्धंमुक्तंसत्यंसूक्ष्मंपरिपूर्णमद्वयम्॥१०
सदानन्दं चिन्मात्रं पुरतःसुविभातमविभातमद्वैतमचिंत्य मलिङ्ग स्वप्रकाशमानं दघनं॥११
यत्तत्सत्यंविज्ञानमानंदंनिष्क्रियंनिरंजनंसर्वगतंसुसूक्ष्मंसर्वतोमुखमनिर्देश्यममृतंनिष्कलम्

वह चेतनअद्वैअमित,सभीअचल नहि भेद। नाशरहित हो एक सुख,सबचेतन कहिवेद॥
आदि वही अब सत्यप्रिय,अद्वैनिर्मल बोध। मुक्तपूर्ण नितअणुसव,सत्य एक सुख शोध॥
अविषयवाणीज्ञानमय,स्वयंज्योति भरपूर। बिनाअतिशयआनंदवपु,चिदाकाशसबपूर॥
सत्यज्ञान आनंद वपु,अक्रिय मायाहीन। व्यापक अणुहै सर्वविधि,अमरअणूकलहीन॥

प्रश्न—आत्म बोधकी सिद्धि के लिये ऐसे विशेषण वर्णन कीजिये जिस से मेरे को सहज में ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति होवे।

उत्तर—स्वयं ज्योति, केवल अद्वैत (एक), सर्व भेद कल्पना से शून्य (रहित), केवल अक्षर व अचल स्वरूप,सदैव शुद्ध, सच्चिदानन्द ब्रह्म सम्पूर्ण विशेषणों का लक्षार्थ है॥९॥

सृष्टि की उत्पत्ति से पहले एक सत्य स्वरूप ब्रह्म था, वह पद कैसा है, माया आदि मल से अतीत व चैतन्य स्वरूप, नित्य, अकर्त्ता, अभोक्ता और सर्व कालों में स्वतः सिद्ध तथा मन, वाणी आदि से परे, सर्व में पूर्ण तथा सर्व भेदों से मुक्त स्वरूप है॥१०॥

परमानन्द स्वरूप केवल चैतन्यमात्र, प्रतीति, व अप्रतीति से रहित और बुद्धि आदि का अविषय, समस्त चिह्नों से अतीत, स्वयं प्रकाश है उसको वेद मन्त्र नेति नेति आदि शब्द से बोधन करते हैं सो आनन्द घन (एक रस) सर्व का अपना स्वरूप है॥११॥

तीनों कालों में एक रस, विज्ञान स्वरूप आनन्द घन, सर्व विकारों से परे, माया के तीनों गुणों से भिन्न, सर्व व्यापक, अत्यन्त सूक्ष्म जिसको मन, वाणी आदि कोई जान व कह नहीं सकते किंतु स्वयं प्रत्यक्ष होता है वह ब्रह्मात्म मेरा स्वरूप है, विद्वान ज्ञान द्वारा ऐसा निश्चय करके कृत कृत्यभाव को प्राप्त होते हैं, इसलिये उत्तम अधिकारियों को तत्वों के विशेषणों के विचार द्वारा अनुभव करना चाहिये इसमें प्रमाद करने पर महान् अवनति और अकल्याण होता है॥१२॥

ध्रुवास्तिमितगम्भीरं न तेजो न तमस्ततम्।निष्कलं निर्मलं शांतं सर्वातीतं निरामयम्॥१३
मनो वचोभ्याम ग्राह्यं पूर्णात्पूर्णं सुखात्सुखम्। द्रष्टृदर्शन दृश्यादि वर्जितं तदिदं पदम्॥१४
नशून्यं नापि चापारि न दृश्यं नापि दर्शनम्। चिन्मात्रं चैत्य रहित मनंतमजरं शिवम्१५
शुद्धं सूक्ष्मं निराकारं निर्विकारं निरंजनम्। अप्रमाणमनिर्देश्यमप्रमेयमतीन्द्रियम् १६॥

अचल महा गम्भीर अति,नहींज्ञान अज्ञान। अफुर शुद्ध है शांत इक,मुक्तरूपसुखखान॥
मन वाणी से परे वह,व्यापक परमानंद। चेतनत्रिपुटि अतीतसब, सोयह बिन निस्पन्द॥
रूप अरूपहि रहित लखु दृशदर्शन बिन जान। चैत्त बिना चेतन वपु,अजरसत्य शिवमान
निर्मलअणू अकार बिन,माया नहींविकार।अविषय वाक प्रमाणनहि,अमितइन्द्रियोंपार।

प्रश्न—ब्रह्मात्म के लक्षायक धर्म जो वेद, वेदान्त में वर्णन किये हैं, वह स्पष्टता पूर्वक कहिये।

उत्तर—ब्रह्म सुमेरु की नाईं अचल, समुद्र के तुल्य अथाह (गम्भीर) और तेज व तम दोनों पक्षों से अतीत, भेद कल्पना से परे तथा अविद्या रूप आवर्ण से रहित, उत्पत्ति आदि षट विकारों से मुक्त, सर्व अनात्म पदार्थों से विलक्षण, दुःख से रहित (परमानन्द स्वरूप) है ॥१३॥

मन, बुद्धि की वृत्तियों का अविषय और वेद, वेदान्त के महावाक्यों के साक्षात् अर्थों से परे और वृत्ति व्याप्ति व लक्षण वृत्ति से जानने योग्य, सर्व जगत् में पूर्ण तथा उत्पत्ति रहित अनादि, आनन्द स्वरूप, दृष्टा, दर्शन, दृश्य आदि त्रिपुटियों से भिन्न, सर्व इन्द्रियों का अगोचर ब्रह्म है ॥१४॥

अशून्य (चैतन्य स्वरूप) सदा विद्यमान और समग्र अवस्थाओं व त्रिपुटियों से परे दृश्य से वर्जित नाश से रहित तथा एक रस, मुक्त स्वरूप पूर्ण, ब्रह्मात्मा क्षीणता से रहित सदा शिव (कल्याण स्वरूप) है ॥१५॥

अज्ञानरूप मैल से रहित, मन, वाणी से अगोचर (नहीं जाना जाय), नाम, रूप आदि सर्व आकारों से अतीत, सदा निर्विकाररूप, माया उपाधि से असंग और प्रत्यक्ष आदि षट प्रमाणों का अविषय, ज्ञेय (दृश्य भाव) से मुक्त, शुद्ध आत्मा ब्रह्म है। उसको यथार्थ जान करके जिज्ञासु जन्म, मरण आदि बन्धनों से मुक्ति पाकर सदा कृत कृत्य होता है इसलिये संसार के सर्व पदार्थों से उपराम होकर पहले कहे विशेषणों के अभ्यास द्वारा ब्रह्मज्ञान का निश्चय करना योग्य है ॥१६॥

निर्लेपकं निरायासन् कूटस्थमचलं ध्रुवम् । सद्घनं चिद्घनं नित्यमानन्द घनमऽव्ययन्१७॥
प्रत्यगेक रसं पूर्ण मनंतं विश्वतो मुखम् । अहेयमनुपादेय मनादेय मनाश्रयम् १८॥
शुद्धं बुद्धं सदा मुक्तमनामकमरूपकम् ।संकल्प संत्तय वशादूगलिते संसारविनश्यति१९॥
स्वच्छं विभाति शरदीव खमा गतायां । चिन्मात्रमेकमजमाद्यमनन्तमेतत् ॥२०॥

नित्य असंगी कूटवत,अचल सत्य चिद्रूप । अविनाशी आनंद घन,इकरस वही स्वरूप॥
आतम पूरण एक रस,अचल अनंत स्वरूप।त्यागग्रहणसे रहित वपु,मन आधार अनूप॥
शुद्ध ज्ञान है मुक्त सत,अशब्द बिन आकार । मनन वासना नाशजब,गलित मोह संसार॥
शरद ऋतु के तुल्यवपु,शुद्ध अहे आकाश । चेतन जन्मोंरहित अज, आदिअनंत प्रकाश॥

प्रश्न—उपनिषदों में वर्णित उत्तम-उत्तम विशेषणों को मैं सुनना चाहता हूँ ।

उत्तर—माया, अविद्या रूप उपाधियों से निर्लिप्त और मर्यादा सहित सर्व जगत् के व्यवहारों के होते भी आत्मा सदा असंग, आनन्द स्वरूप और सर्व क्रियाओं से अतीत, विक्षेप रहित, अचल, चैतन्य मात्र, सत्य स्वरूप, सजाति आदि सम्पूर्ण भेदों से मुक्त है ॥१७॥

सर्व प्रत्यों वृत्तियों का प्रकाशक और प्रमा, अप्रमा, विकल्प, स्मृति, अभाव इन पाँचों वृत्तियों से परे इनका साक्षी और परिणाम भाव से रहित, सब में एक रस व्यापक (पूर्ण), नाश रहित, केवल आनन्द स्वरूप, स्वतः-सिद्ध, सर्व संसार का आधार ब्रह्म तत्व है ॥१८॥

माया, अविद्या रूप उपाधियों रहित, सदा ज्ञान स्वरूप और अन्तः-करण के धर्म कर्त्ता, भोक्ता आदि से मुक्त और नामरूप आदि आकारों से अतीत, ब्रह्म चैतन्य है उसके यथार्थ ज्ञानकर दुर्वासना से रहित हुआ विज्ञ संसार बन्धनों से मुक्त होता है ॥१९॥

जैसे शरद ऋतु में आकाश निर्मल होता है तैसे ही सर्व शब्द, अर्थों व व्यवहारों विकारों से परे ब्रह्म सदैव मुक्त (असंग) है, विश्व के सर्व पदार्थों में व्यापक हुआ भी कभी बन्ध में नहीं पड़ता, यह बन्ध, मुक्त बालकों का परिचय है और पहिले कहे विशेषणों के वर्णन करने से जगत् के स्वरूप का निशेध करके शेष लक्षणावृत्ति से अद्वैत आत्म ब्रह्म का अप-रोक्ष ज्ञान होकर कृत कृत्यता प्राप्त होती है ॥२०॥

अन्तरीय धारण चतुर्थ रत्न

ऐक्य मन्तव्य विभास (१६)

उदेति भवतो विश्वं वारिधेरिव बुद्बुदः। इति ज्ञात्वैकमात्मानमेवमेव लयं व्रज ॥१
सम दुःख सुखः पूर्ण आशा नैराश्य यो समः। सम जीवित मृत्युः सन्नेवमेवलयं व्रज॥२
रज्जुसर्पवदात्मानं जीवं ज्ञात्वा भयं भवेत्। नाहं जीवः परात्मति ज्ञातं चेन्निर्भयोभवेत्॥३

वारिध में ज्यों बुद्बुदे, ऐसे सृष्टी भेद। ब्रह्म एक यह जानकर, आतम होइ अभेद॥
आशनिराशा दुःख सुख, एकब्रह्मसम जान। जीवत मरण वही वपु, करे भेद सब हान॥
जगत जीव यह तभी लग, अधिष्ठान को भूल। रज्जूमिथ्या सर्पलखु, जीव होंयभयशूल॥

प्रश्न—मैं जीव व ब्रह्म की एकता जानना चाहता हूँ, स्पष्ट कहिये।

उत्तर—जैसे समुद्र में वायु करके तरंग (लहर) चक्र, बुदबुदे आकार हो भासते हैं परन्तु जल एक रहता है, तैसे ही अज्ञान की विशेष शक्ति से भूत, भौतिकमय नाम, रूप और सर्व व्यवहार भास आते हैं परन्तु ब्रह्मात्मा एक है, और दर्पण व प्रतिबिंबों के दृष्टान्त को विचार देखिये अर्थात् दर्पण के समान ब्रह्मात्मा शुद्ध, प्रकाशक, शान्त, एक, असंग और सम्पूर्ण आकारों का अधिष्ठान (आधार) है और प्रतिबिंबों के तुल्य सर्व दृश्य (जगत्) इस से विपरीत (उलटा) स्वभाव वाला है ॥१॥

सुख, दुःख व इच्छा, अनिच्छा और जन्म, मृत्यु, आदि सांसारिक सब पदार्थों में व्यापक अद्वैत ब्रह्म को निश्चय करना समता (सम दृष्टि) है अर्थात् नाम रूप आदि सर्व जगत् को बाध (झूंठा) जान करके एक ब्रह्म-का ज्ञान होना समता कहाती है परन्तु एक जैसे बर्ताव करना अज्ञानता ही नहीं बल्कि असंभव है ॥२॥

जैसे अन्धकार में रस्सी के अज्ञान से मिथ्या सर्प का भ्रम होकर भय कंप आदि विकार जीवों के हृदय में होते हैं तैसे ही ब्रह्मात्मा के यथार्थ नहीं जानने पर जगत् के सब व्यवहार होते, भासते हैं, जब ब्रह्म का यथार्थ ज्ञान होता है तब जगत् के सर्व आकार व व्यवहारों के प्रतीत होते हुये भी उन सर्व का अत्यन्ताभाव निश्चय होकर अद्वैत, निर्भय ब्रह्म के जानने पर सर्व बन्ध (सांसारिक दुःखों) का अत्यन्ताभाव होकर कैवल्य पद प्राप्त होता है ॥३॥

तावत्सत्यं जगद्भाति शुक्तिका रजतं यथा। यावन्न ज्ञायते ब्रह्म सर्वाधिष्ठानमद्वयम्॥४
दृश्यं नास्तीति बोधेन मनसो दृश्य मार्जनम्। संपन्नं चेत्तदुत्पन्ना परा निर्वाण निर्वृति॥५
आनंदो विषयानुभवोनित्यत्वंचेतिसंतिधर्माः।ब्रह्मणोऽपृथक्त्वोपिपृथगिवावभासंतइति।६

दृश्य सत्य का भान सब, शुक्ती रजत समान। ब्रह्मातम का ज्ञान जब, भेद होंइ सब हान॥
तीन काल में दृश्य नहि, मन का मैल मिटाय। निश्चय अद्वैयुक्त जो, पर निर्वाणहि पाय॥
सत चेतन आनन्द यह, तीनों एक स्वरूप। आत्म ब्रह्म अभेद नित, भेद जान तम कूप॥

प्रश्न—जिन जिन युक्तियों से ब्रह्मात्मा का अद्वैत ज्ञान दृढ़ होवे, वह वर्णन कीजिये।

उत्तर—जब तक शुक्ति (सीपी) का यथार्थ ज्ञान नहीं होता तब लग रजत (चांदी) इत्यादि का भ्रम होकर उसमें लोभ होता है, तिसी प्रकार अद्वैत शुद्ध, चिदानन्द का जब तक यथार्थ अनुभव नहीं होता तभी लग अज्ञानी जीवों की जगत् के सम्पूर्ण आकार व व्यवहारों में सत्य व सुख बुद्धि दूर नहीं होती और अद्वैत ब्रह्मात्म के दृढ़ बोध होने पर सर्व भ्रान्ति मूल सहित नाश होकर सांसारिक सर्व पदार्थों का मिथ्यत्व निश्चय होता है॥४॥

स्वप्न सृष्टि के तुल्य तीनों कालों में जगत् का अत्यन्ताभाव है प्रपंच की सत्य बुद्धि रूप ध्येय वासना (संशय, विपर्य्य) को हृदय से दूर कर अद्वैत ब्रह्म के बोध से विद्वान् अफुर पद को प्राप्त होता है, और ब्रह्म में फुरणा होकर जगत् होता है, यह कथन भी आरोप दशा में है, अर्थात् तीन सत्ता रूप भौतिक सृष्टि के भाव छुड़ाने के लिये वेदान्त में वर्णन किया है, वास्तव से ब्रह्म नित्य, अफुर (अच्युत) और निर्विकार है॥५॥

आनन्द, चैतन्य, सत्यपना यह तीनों विशेषण एक ब्रह्म के हैं, इनके भेद प्रतीत हुए भी ब्रह्म में भेद कभी नहीं होता, जैसे शुक्रता, शीतलता बोझलता यह बर्फ के गुण हैं, भेद नहीं, तैसे सत, चैतन्य, आनन्द आदि ब्रह्मात्मा के विशेषण हैं, इससे यह स्पष्ट हुआ कि सर्वनाम, रूप एक ब्रह्म के लखायक हैं अर्थात् विष्णु, शिव, राम, कृष्ण, गोविन्द माधव इत्यादि, सर्व शब्दों का लक्ष्यार्थ एक ब्रह्मात्मा है इसीलिये श्रीकृष्ण आदि ने अपने उपदेशों में अधिकारियों को वास्तव स्वरूप जनाया है॥६॥

सत्यमात्मा ब्रह्मैव ब्रह्मात्मै वात्र ह्येव न विचिकित्स्यम् ॥७॥
त्वं ब्रह्मासि अहं ब्रह्मास्मि आवयोरन्तरं न विद्यते त्वमेवाहमहमेवत्वम् ॥८॥
चतुर्मुखेन्द्र देवेषु मनुष्याश्वगवादिषु । चैतन्यमेकं ब्रह्मान्तः प्रज्ञानं ब्रह्ममय्यपि ॥९॥
स्वतः पूर्णः परात्मात्रब्रह्मशब्देन वर्णितः। अस्मीत्यैक्यपरामर्शात्तेन ब्रह्मभवाम्यहम्॥१०

आत्म ब्रह्म है एक सत,ब्रह्म आतमा रूप । संशय रंचक नहिं वपु, निश्चय धरो स्वरूप॥
तू ब्रह्मातम ब्रह्म सम, नहीं किसी में भेद । तू मैं हम तुम एक लखु, आतम ब्रह्म अभेद ॥
ब्रह्मा इन्द्रहि देव सब, पशु मनुष्य सब एक । लखहु जीव तुम ब्रह्ममय, ब्रह्म पूर्ण प्रत्येक ॥
व्यापक है परमात्मा, कहैं वेद तिस नाम । कर विचार ब्रह्मातमा, किया ब्रह्म विश्राम ॥

प्रश्न—वेद भगवान् के महावाक्यों द्वारा जीव, ब्रह्म की एकता दर्शाइयेगा।

उत्तर—त्वंपद का लक्ष्यार्थ साक्षी आत्मा केवल ब्रह्म स्वरूप है, इस प्रकार से सम्पूर्ण जगत् बाध द्वारा एक आत्म ब्रह्म है, इसमें आस्तिक मनुष्यों को कभी तर्क व संशय नहीं करना चाहिये, क्योंकि वेद के प्रमाणों से अधिक दूसरा कोई प्रबल उपाय एकता का विद्यमान नहीं ॥७॥

इस लिये ब्रह्मात्मा की अभेदता के विषय में सर्वज्ञ व वेद अमृतमय उपदेश करते हैं कि तू अद्वैत ब्रह्म है और मैं भी ब्रह्म हूँ, भेद संभव नहीं, भेद केवल अज्ञानियों का कल्पा हुआ है। जैसे शीशमहल में प्रवेश हुआ स्वान भेद जानकर भूंस-भूंस कर बाबरा होता है तैसे ही अज्ञानी भेद मानकर बँधता है, वास्तव में तू और मैं दोनों एक ब्रह्म स्वरूप हैं। अतः आत्म व ब्रह्म को एक रूप जानो ॥८॥

पितामह ब्रह्मा जी व इन्द्र आदि सर्व देव व मनुष्य, असुर और अश्व (घोड़ा), गऊ तथा समस्त चौरासीलाख जीव सबको वास्तव से अद्वैत ब्रह्मात्म रूप निश्चय करो ॥९॥

स्वतः सिद्ध, सर्व के आधार, व्यापक आत्मा को वेदादि ब्रह्म शब्द से कथन करते हैं, अतः जीव, जगत को शास्त्रों की युक्ति द्वारा ब्रह्मरूप निश्चय करो। यह चार प्रकार से यथार्थ हो सकता है अर्थात् पूर्व के शुद्ध संस्कार सत्संग, संतोषपूर्वक निर्वाह और शास्त्र रीति पूर्वक ठीक प्रयत्न। यदि सर्व यथार्थ रीति से हों तब ज्ञान शीघ्र दृढ़ होता है, इनमें जितनी-जितनी त्रुटि होती है उतनी-उतनी ज्ञान में कसर रहती है ॥१०॥

दृश्य मानस्य सर्वस्य जगतस्तत्त्व मीयते । ब्रह्म शब्देन तद्ब्रह्म स्वप्रकाशात्म रूपकम्॥११
मायाविद्ये विहायैव उपाधी परजीवयोः । अखंण्डं सच्चिदानंदं परं ब्रह्म विलक्ष्यते ॥१२
क्षीरंक्षीरे यथा क्षिप्तं तैलं तैले जलं जलेःसंयुक्तमेकतां याति तथात्मन्यात्मविन्मुनिः॥१३
घटे नष्टे यथा व्योम व्योमेन भवति स्वयम् । तथैवोपाधि विलये ब्रह्मैव ब्रह्मवित्स्वयम्॥१४

दृश्य मानसबजगतकायहीतत्त्वपहिचान । परात्म आतमएक वपु, ब्रह्मप्रकाशहि जान॥
माय अविद्या त्याग दो, जीव उपाधी ईश। एक सच्चिद।नंदलखु,अखण्ड वपु जगदीश॥
तेल नेह पुनि चीरपय, एक होय जलनीर । होइ ब्रह्ममय ब्रह्मवित लखो एक तुम वीर ॥
घट फूटे आकाश वह, महाकाश होइ लीन । होवे बाध उपाधि जब, ब्रह्मब्रह्मवित चीन ॥

प्रश्न—जब वेद, वेदान्त अद्वैत वर्णन करते हैं, तो भेद क्यों भासता है ?

उत्तर—भेद केवल भ्रान्ति से भासता है, श्रुति का कथन है कि दृश्यमान सर्व जगत् के मिथ्या जानने पर एक आत्मा निश्चय होता है, उस तत्त्व को ब्रह्म रूप कहते हैं, अर्थात् जीव व ईश्वर और जगत् के सर्व व्यवहारों के कल्पित भेद प्रतीत होते हुये भी वास्तव में ब्रह्म अद्वैत, स्वयं प्रकाश है और अनेक प्रकार का भेद मायाकृत है, जैसे रामायण में भी लिखा है कि 'गो गोचर जहि लग मन जाई, सो सब माया जानो भाई' ॥११॥

माया, अविद्या इन दोनों उपाधियों व तिनके कार्य रूप सर्व प्रपंच को असत्य निश्चय करके, सजाति आदि सर्व भेदों के रहित जगत् का अधिष्ठान सच्चिदानन्द एक ब्रह्म शेष भासता है ॥१२॥

जैसे दूध में दूध व तैल में तैल अथवा जल में जल मिलाये हुये एक-में एक होते हैं, तैसे जीव, ईश्वर जगत् के सर्व व्यवहारों को वेदान्त की पूर्व कही युक्तियों द्वारा अद्वैत ब्रह्मात्मा का दृढ़ निश्चय होता है ॥१३॥

घट उपाधि के अभाव होने से घटाकाश महाकाश होता है तैसे ही माया व अविद्या आदि सर्व उपाधियों को मिथ्या निश्चय करके शुद्ध अद्वैत सच्चिदानन्द का दृढ़ बोध होकर कैवल्य भाव की प्राप्ति होती है, पश्चात् विक्षेप व समाधि तुल्य होती हैं, कारण यह है कि वेद आदि में विद्वानों की ज्ञान काल में ही विदेह कैवल्यता वर्णन की है । परन्तु देह व अन्तःकरण के व्यवहार यथा प्रारब्ध अज्ञानियों के तुल्य ज्ञानियों के भी होते हैं ॥१४॥

यथाफेन तरंगादि समुद्रादुत्थितं पुनः। समुद्रे लीयते तद्वज्जगन्मय्यनुलीयते ॥१५
न मे बन्धो न मे मुक्तिर्नमे शास्त्रं न मे गुरुः। मायामात्र विकासत्वान्मायातीतोऽहमद्वयः१६
ब्राह्मण्यं कुलगोत्रे च नाम सौन्दर्य जातयः। सर्वे स्थूलगता ह्येतेस्थूलाद्भिन्नस्य मे नहि॥१७
क्षुत्पिपासान्ध्यं वाधिर्यं कामक्रोधादयोऽखिलाः। लिङ्ग देहगताह्येतेह्यलिङ्गस्य न विद्यते॥१८

उठें तरंगहि झाग निधि, वारिधसे हों लीन। तैसे ही यह जगत सब, ब्रह्मातम मधि चीन॥
बन्ध मोच्छ मुझको नहीं, गुरू शिष्य मम रूप। माया रूप विकार सब, मैं इक शुद्धस्वरूप॥
जाति गोत्र सब नाम कुल, धर्म देह लखु थूल। सब देह से परे मम, मधि मेरे नहिं भूल॥
अंध पिपासा बधिर, क्षुध, लोभ काम अरु क्रोध। देह सूक्ष्महि धर्म यह, वपू मुक्त यह शोध॥

प्रश्न—जगत् की उत्पत्ति विनाश प्रत्यक्ष भासते हैं, उनकी व्यवस्था क्या होगी ?

उत्तर—जैसे झाग, तरंगादि विकार समुद्र (जल) में उठकर पुनि उसी में लय हो जाते हैं और घड़ा, सकोरा आदि सर्व बासन वास्तव से एक मिट्टी है और व्यवहार काल में कारण, कार्य व नाम, रस और सर्व बर्ताव का होना (भासना) कल्पित व्यवहार तक है परमार्थ से जल व मृतका में कुछ भेद नहीं। तैसे ही जगत् के नाम रूप और सर्व व्यवहारों में अद्वैत रूप चैतन्य (ब्रह्मात्मा) पूर्ण है ॥१५॥

विचार से देखें तब बन्ध, मोक्ष व गुरु, शिष्य और शास्त्र उपदेश इत्यादि रचनाओं का मेरे स्वरूप (ब्रह्म) में अत्यन्ताभाव है वास्तव से कोई भी पदार्थ सत्य नहीं किंतु मन रूप बालक भ्रान्ति दशा में समस्त जगत की कल्पना करता है, पहली कही युक्तियों से जैसे मायिक सर्व पदार्थ झूठे हैं तैसे मन भी मिथ्या है ॥ १६ ॥

जाति, गोत्र मत (पन्थ) और इनके धर्म यह सर्व कल्पित स्थूल देह के धर्म हैं और मैं आत्मा इनका साक्षी सदा असंग और निर्विकार हूँ ॥ १७ ॥

इस प्रकार क्षुधा, तृषा व काम, क्रोध आदि विकार सूक्ष्म देह (अंतः-करण आदि में) स्थित होते हैं और मैं नित्य, निर्विकार, शुद्ध, निर्दुःख, अद्वैत स्वरूप हूँ। जैसे स्वप्न सृष्टि में सर्व पदार्थ व मर्यादाएँ निद्रा काल में सत्य भासती हैं तैसे ही अज्ञान कर जगत भासता है और दृढ़ बोध के होने पर कल्पित रूप सर्व रचना ब्रह्मात्मा में लय हो जाती है ॥१८॥

संवित्स्वप्नार्थ योर्द्वित्वं नकदाचन लभ्यते। यथाद्रवत्वपयसोर्यथा वा स्पंद वातयोः ॥१६
नचार्थो भवितुं शक्यःसत्यत्वे स्वप्नतोदितः।संविदोनित्यसत्यत्वं स्वप्नार्थोनामसत्यता२०
जड़त्व प्रिय मोदत्वधर्माः कारण देहगाः। नसन्ति मम नित्यस्य निर्विकारस्वरूपिणः॥२१
विष्णुंध्यायतुधीर्यद्वा ब्रह्मानन्दे विलीयताम्। सादयहं किंचिदप्यत्र न कुर्वेनापिकारये॥२२

ज्ञानदृष्टिहो अग्रगत,संवित स्वप्न अभेद। दूध द्रव्यता एक लखु,फुरस वायु किम भेद॥
स्वप्न कल्पना जगत यह,सत्य कभी नहिंहोइ।चिद सत्ता व्यभिचारबिन,सत्यकहीजेसोई॥
जड़त्व मोदप्रमोद प्रिय,धर्मकार्ण तनमान।बिनाविकल्पहि रूपमम,ब्रह्ममध्य नहि जान॥
बुद्धी सुमिरे हरी को,मैं साक्षी आनंद। लखु असंग निज आत्मा,कर्तव कृत सब बंद॥

प्रश्न—यह सर्व भेद कब तक भासता है, युक्तियों से निर्णय कीजिये।

उत्तर—जैसे जाग्रत हुए अनुभव सत्ता व कल्पित स्वप्न सृष्टि का भेद नहीं रहता और दूध व द्रवता तथा स्पंदता (चलना) व वायु में कभी भेद नहीं है, तैसे ही वस्तु विचार (ज्ञान) के होने पर यह कल्पित सर्व भेद नष्ट हो जाता है अर्थात् इस जगत् के भासते हुए भी अनुभवसत्ता (साक्षी) स्वयं प्रकाश, आनन्दघन, अद्वैत, निर्विकार, शुद्ध, सर्व प्रपंच का अधिष्ठान एक है, भेद कल्पना अज्ञान तक मिथ्या भासती है ॥१६॥

स्वप्न सृष्टि के तुल्य जाग्रत प्रपंच के सम्पूर्ण पदार्थ परस्पर व्यभिचारी होने से सत्य नहीं हो सकते, इन सर्व में पूर्ण एक आत्मा ब्रह्म सत्य स्वरूप है, अतः मुमुक्षुओं को स्वप्न और तत् साक्षी (अनुभव सत्ता) का विचार नित्य करना योग्य है ॥२०॥

जड़ता, आलस्य व सुषुप्ति आदि में होने वाले प्रमोदता आदि धर्म कारण देह के हैं, इन सर्व का ब्रह्म में वास्तव से अत्यन्ताभाव है। जैसे चांदनी के वस्त्र में अश्व, हस्ती, गऊ और मनुष्य आदि के अनेक आकार, व्यवहारों सहित चित्र भासते हैं, बुद्धिमान उन सर्व को कल्पित (झूठे) जानते हैं तैसे विद्वान् जगत भर में ब्रह्मात्मा को सत्य समझते हैं ॥२१॥

बुद्धि विष्णु देव का ध्यान धरे अथवा जीव ब्रह्म की एकता को निश्चय करे, मैं (आत्मा) बुद्धि आदि के सर्व कर्त्तव्यों से न्यारा प्रकाशक हूँ। इस प्रकार के दृढ़ अनुभव से विद्वानों को लौकिक, वैदिक सर्व व्यवहार सत्य नहीं जान पड़ते हैं ॥२२॥

चिद्रूपत्वान्नमेजाड्यं सत्यत्वान्नानृतंमम।आनन्दत्वान्नमे दुःखमज्ञानाद्भाति सत्यवत्।२३
ज्ञातंज्ञातव्यमधुनादृष्टंद्रष्टव्यमद्भुतम्।विश्रांतोऽस्मि चिरंश्रान्तश्चिन्मात्रान्नास्तिकिंचन।२४
नभूतं नभविष्यंचचिन्तयामिकदाचन।नस्तौमिनचनिंदामि ह्यात्मनोऽन्यन्नहिकिंचित्।२५

जड़ में नाहीं ब्रह्मचिद्,कहां सत्य में झूठ। दुःख कहां आनंद गत. खोल भरम की मूठ ॥
दर्शनदृश्यरुज्ञानज्ञय,यहभ्रम तजि विश्राम।आतमचेतन रूपमम,अब किंचित नहिं काम ॥
भूत भविष चिन्तों नहीं,नहीं स्तुति अरु निंद। ब्रह्मातमसेभिन्नकुछ,नहिं जानों मैं विंद ॥

प्रश्न–ब्रह्म में कई वादी संसार की सत्य कल्पना करते हैं; वह कैसे है ?

उत्तर–केवल चैतन्य स्वरूप में जड़ जगत् व सत्य रूप में असत्यता और आनन्दघन में दुःख रूप संसार का होना वास्तविक नहीं, जैसे समुद्र में स्थित जहाज के आकारों का प्रतिबिंब अर्थात् जहाज में बैठे सर्व जीवों के आकार व्यवहार जल में भासते हुए भी समुद्र की कुछ भी हानि लाभ नहीं करते। तैसे कल्पित सृष्टि के नाम, रूप व व्यवहारों के होते (भासते) हुये भी ब्रह्म समुद्र की अवनति व उन्नति नहीं होती और जैसे दृष्टि दोष से शुद्ध प्रकाश में त्रिवर्ग (तरुरे) भास आते हैं परन्तु आकाश में किंचित् बाधा नहीं होती तैसे ब्रह्म में सृष्टि कल्पित है, यदि सत्य होती तब वेद वेदान्त, ब्रह्मात्मा को अद्वैत, शुद्ध, अच्युत क्यों लिखते ॥२३॥

द्रष्टा, दर्शन, दृश्य व ज्ञाता, ज्ञान ज्ञेय इत्यादि सर्व त्रिपुटियाँ केवल भ्रान्ति मात्र हैं। अविचार दशा में अज्ञानियों को जगत् सत्य भासता है परन्तु शव के साथ जा करके वह भी राम-राम सत्य है और सर्व असत्य है ऐसा कहते व मानते हैं ॥२४॥

मैं भविष्य का विचार व भूत का स्मरण नहीं करता और न किसी की स्तुति व निन्दा करता हूँ क्योंकि मेरे स्वरूप में तीनों कालों सहित जगत् है नहीं ॥२५॥

कारण कार्य रूप जगत् न पहिले था व अब भी नहीं और न आगे होवेगा। जैसे सफेद काच के गिलास में लाल वस्त्र के सम्बन्ध होने तक गिलास लाल भासता हुआ भी वास्तव से गिलास में लाली तीनों कालों में नहीं है तैसे माया व तिसका रचा हुआ कल्पित जगत् असत्य है, फिर इसके व्यवहारों से मुझ ब्रह्म स्वरूप का सम्बन्ध ही क्या ? ब्रह्मात्मा इससे विलक्षण अस्ति नास्ति से परे केवल शुद्ध अच्युत स्वरूपहै ॥२६॥

यथास्वप्ने जगद्द्रष्टुः शांतंशाम्यत्यमेषतः । तद्वद्स्मज्जगदिदं शान्तं शाम्यत्यशेषतः ॥२७
यथा यंत्वंसितोदान्तरेक एवादितः कचैः । तथा ब्रह्मैवमच्छात्मसर्गे सर्गक्षयऽक्षयम्॥२८

जाग्रतजगयह स्वप्न में,अतिशय होता शांत। मध्य सुषुप्ति स्वप्न जग,ब्रह्म एक निःभ्रांत॥
स्वच्छवारिनिधिहृदयगत,बिंबप्रतिबिंबहिहोइ। सर्गप्रलयप्रतिभासक्षय,तत्त्वइकब्रह्मसोइ॥

प्रश्न—यदि स्वप्नसृष्टि की नाईं यह जगत असत्य है तो मुझे स्पष्ट करके जनाइये।

उत्तर—जैसे स्वप्न में जाग्रत का व सुषुप्ति में स्वप्न का अभाव होता है तैसे ही ज्ञान दशा में जाग्रत आदि से रहित निर्विकार ब्रह्म शेष रहता है, इसको मनन करने के लिये विस्तार से लिखते हैं॥

स्वप्नसृष्टि का अधिष्ठान ब्रह्म मैं हूँ और स्वप्नसृष्टि अध्यस्त (कल्पित) संस्कारों से भासती है, मैं सत्य स्वरूप आत्मा हूँ १ और यह दृश्य क्षणिक है २ स्वप्न में इष्टप्रिय की इच्छा व अप्रिय का त्याग स्वात्मा के अर्थ होता है अतः आत्मा ही आनन्दघन है ३ स्वप्न में भासे अनेक आकारों व तीन कालों व सर्व व्यवहारों में भेद से रहित मैं हूँ ४ स्वप्नसृष्टि के उदय, अस्त आदि सर्व विकारों के होने में साक्षी अच्युत (निर्विकार) मैं हूँ ५ स्वप्न के चिदाभास सुख दुःखों के भोगता भासते हैं मैं चैतन्य सर्व ज्ञाता सर्वदा मुक्त स्वरूप हूँ ६ स्वप्न, जगत् अविद्या आदिकर रचित व राग द्वेष से पूर्ण दृष्ट होते भी मैं स्वयं प्रकाश, नित्य, शुद्ध स्वरूप ब्रह्मात्मा हूँ ७ इन सात (७) विशेषणों को समुद्र में भासित प्रतिबिंबों में घटाकर अद्वैत ब्रह्म को समुद्र के नाईं अपार अचल जानो ॥२७॥

जैसे समुद्र में सर्व आभास भासते हैं परन्तु उनकी उत्पत्ति व लय से रहित समुद्र स्वच्छ अद्वैत है तैसे ही मुझ ब्रह्म में जगत् की उत्पत्ति व प्रलय और मध्य के सर्व व्यवहारों के प्रतीत होते हुये भी मैं नाश से रहित केवल चैतन्य घन नित्य विद्यमान हूँ; इस प्रकार से जिज्ञासु मनन करके तीव्र अभ्यास द्वारा ब्रह्मज्ञान को प्राप्त होकर जीवन्मुक्तपद में विश्राम पाता है और देह आदि के व्यवहार प्रारब्ध के आधीन होते रहते हैं। इस दुर्लभ अवसर (मनुष्य शरीर व उत्तम बुद्धि) को पाकर जो ब्रह्म निष्ठा में प्रमाद (भूल) करते हैं उनको अति अनजान व आत्मा का शत्रु समझियेगा ॥२८॥

निदिध्यासन विभास (१७)

द्वंद्वादि साक्ष्यह मचलोहमहंसनातनः। सर्वं साक्षी स्वरूपोहमहमेवहमव्यः ॥१॥
प्रज्ञानघन एवाहं विज्ञानघन एवच। अकर्त्ताहमभोक्ताहमहमेवाहमव्ययः ॥२॥
निराधार स्वरूपोहं सर्वाधारोहमेवच। आप्तकाम स्वरूपोहमहमेवाहमव्ययः ॥३॥
दृग् दृश्यौ द्वौ पदार्थौस्तःपरस्पर विलक्षणः। दृग् ब्रह्म दृश्यंमायेति सर्ववेदान्तडिंडिमः॥४॥
ताप त्रय विनिःमुक्तो देह त्रय विलक्षणः। अवस्था त्रय साक्ष्यस्मिचाहमेवाहमव्ययः॥५॥
अहं साक्षीतयोर्विद्याद्विविच्यैवं पुनः पुनः। साएवमुक्तोऽसौ विद्वान्निति वेदांतडिंडिमः॥६॥

साक्षी हूँ सब द्वंद्वका, क्रिया रहित पौरान। सबका साक्षी रहूँ सम, लखो एक रस ज्ञान॥
ब्रह्मज्ञान घन सत्य मैं, सोइ ज्ञान विशेष। नहिं कर्त्ता नहीं भोक्ता, अव्यय रहूँ अशेष॥
मेरा नहीं अधार को, सबका हूँ आधार। रहूँ सत्य संकल्प नित, इकरस लखूं अपार॥
इक द्रष्टा पुनि दृश्य लखु, दोइ विरोधी भाव। द्रष्टा ब्रह्म प्रकृति जग, लख वेदांत प्रभाव॥
जान मुक्त त्रय ताप से, देह विलक्षण तीन। सभी अवस्था ज्ञानमय, अव्यय आतम चीन॥
मैं साक्षी सब जानकर, बारम्बार विचार। जीवन्मुक्तहि विज्ञसो, कहि वेदांत पुकार॥

प्रश्न—जिसकर तीनों विपर्य्य दूर हों, सो वाक्य प्रतिपादन कीजियेगा।

उत्तर—शीतोषण व सुख, दुःख आदि मन के धर्मों से परे, इन सर्व का साक्षी, अक्रिय रूप, अनादि, एक रस, सर्व का प्रकाशक, मैं परब्रह्म अद्वैत हूँ ॥१॥

अनन्त, चैतन्य, नित्य, अकर्त्ता, अभोक्ता मैं प्रत्यगात्मा, सर्व विकारों से अतीत, सदा मुक्त स्वरूप हूँ ॥२॥

स्वयं प्रकाश, सर्वाधार, सत्य स्वरूप, अनुभवमय, तीनों कालों और सर्व अवस्थाओं का प्रकाशक (सिद्ध करता), एक रस, मैं सर्व का साक्षी हूँ और सर्व इच्छाओं से अतीत आप्तकाम (सत्य संकल्प) मैं हूँ ॥३॥

अध्यात्म, अधिदैव, अधिभूत तीनों तापों से अतीत, तीनों शरीरों से विलक्षण, जगत के सर्व पदार्थों का साक्षी, मैं प्रत्यगात्मा हूँ ॥४॥

सर्व कालों में एक रस द्रष्टा (जानने वाला) और दृश्य (प्रपंच) यह दो ही पदार्थ हैं, द्रष्टा सच्चिदानन्द रूप और दृश्य असज्जड़, दुःख रूप है ॥५॥

मैं सर्व जगत् का साक्षी हूँ, जो पूर्व कही रीति से आत्म ब्रह्म को निश्चय करता है, वह विद्वान् है, सोई जीवन्मुक्त समझा जाता है ॥६॥

घट कुड्यादिकं सर्वं मृत्तिकामात्र मेवच । तद्वद्ब्रह्म जगत्सर्वमिति वेदांत डिंडिमः ॥७॥
ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः। अनेन वेद्यं सच्छास्त्रमिति वेदांत डिंडिमः८
अन्तर्ज्योतिः बहिर्ज्योतिः प्रत्यग्ज्योतिः परात्परः ।
ज्योतिर्ज्योतिः स्वयं ज्योति रात्मज्योतिः शिवोऽस्म्यहम् ॥९॥
द्रष्टृ दृश्य समायोगात्प्रत्ययानन्द निश्चयः।यस्तं स्वमात्म तत्त्वोत्थंनिःस्पदं समुपास्महे॥१०
द्रष्टृ दर्शन दृश्यानि त्यक्त्वा वासनयासह । दर्शन प्रथमाभासमात्मानं समुपास्महे ॥११॥

घट भीतहि सब रूपजो,माटी ही सबजान। ब्रह्मसभी जगताहि विधि,वेदांतहि यहज्ञान ॥
ब्रह्म अबाधित कालत्रय,लख सब दृश्य असार। लच्यरूप वेदांतपुनि,सब वेदों का सार ॥
अन्तरबाह्य प्रकाशवपु,साची माया पार। सबज्योत्योंका ज्योतिलखु,बोधआत्मशिवधार॥
द्रष्टादृश्य संबन्धसे,मानें सुख अजान। जिस आतमसे उदयसुख,करते हम तिस ध्यान॥
द्रष्टा दर्शन दृश्यको,सहित वासना त्याग । सिद्ध प्रथमजोत्रिपुटिसे,तिस आतममें जाग॥

प्रश्न—सिद्ध गीता में जो निदिध्यासन का प्रकार कथन किया है, सो कहिये ।

उत्तर—घड़ा, कोठा आदि सर्व मिट्टी के विकार एक मृत्तका मात्र हैं, तैसे ही नामरूप आदि सर्व संसार के बाध द्वारा एक ब्रह्मात्मा चैतन्य रूप है, सर्व वेद और वेदान्त का यह परम तत्त्व (सिद्धान्त) है ॥७॥

ब्रह्म सत्य स्वरूप है, जगत असत्य है और जीव साक्षात ब्रह्म है, स्वप्न के दृष्टांत रूप युक्ति व वेद आदि के प्रमाणों से यह सिद्ध है ॥८॥

सूक्ष्म रूप मन बुद्धि और तिनके सर्व धर्मों का साक्षी (ज्ञाता), सर्व दृश्य का प्रकाशक, सर्व वृत्तियों का सिद्ध करता और ईश्वर, हिरण्यगर्भ, विराट, तीनों मात्राओं से परे चतुर्थ मात्रा शुद्ध ब्रह्म है ॥९॥

चक्षु आदि इन्द्रियों के द्वारा जीवात्मा को अपने इष्ट पदार्थों के भोग काल में जो क्षणिक आनन्द प्रगट होता है उस आनन्द की सीमा ब्रह्मानन्द, विज्ञान करके पाने योग्य आत्मा की हम सर्वदा उपासना (अभ्यास) करते हैं ॥१०॥

सर्व त्रिपुटियों को अत्यन्त असत्य जानकर और संशय, विपर्य्य रूप ध्येय वासना का परित्याग करके, सम्पूर्ण वृत्तियों से प्रथम सिद्ध और ज्ञाता, ज्ञान ज्ञेय, रूप त्रिपुटि को एक रस जानने वाले साक्षी की हम सर्वदा उपासना (ध्यान) करते हैं ॥११॥

द्वयोर्मध्य गतं नित्यमस्ति नास्तीतिपक्षयोः। प्रकाशनं प्रकाश्यानामात्मानं समुपास्महे॥१२
यस्मिन्सर्वं यस्य सर्वं यतः सर्वं यस्माइदम्। येन सर्वं यद्धि सर्वं तत्सत्यं समुपास्महे॥१३
अशिरस्कंहकारान्तमशेषाकार संस्थितम्। अजस्रमुच्चरंतं स्वंतमात्मानमुपास्महे॥१४॥
संत्यंज्य हृद्गुहेशानं देवमन्यं प्रयांतिये। तेरत्नमभिवांछतित्यक्तहस्तस्थ कौस्तुभाः॥१५॥

नास्ति अस्ति दो पक्ष में, ब्रह्मात्म अनुसूत। जान प्रकाशक दृश्य का, लखों नित्य अनुभूत॥
जगसब जिसमें विश्वसब, जिससेतीसबहोय। सबही जिसकर सर्वजो, सो आतमहमजोय॥
प्रथमाक्षरहकार लखु, मध्य पूर्ण आकार। योग्य हनन नहि पूर सब, ब्रह्मातम उरधार॥
रहा हृदय रम गुफामें, देव ब्रह्म को त्याग। करे उपासना अन्य की, तजे मणी हत भाग॥

प्रश्न—अदृष्टरूप नौ योगीश्वरों की सिद्ध गीता और वर्णन कीजिये।

उत्तर—वृत्ति ज्ञान से पहले, प्रकाशरूप सर्व का साक्षी, अन्तर पूर्ण तथा है व नहीं, इन दोनों पक्षों से परे और वादी प्रतिवादी के तत्व का भी साक्षी अर्थात् सम्पूर्ण को एक रस सिद्ध करने वाला तथा नास्ति, अस्ति इन विरोधी पक्षों का आश्रयभूत सत्ता मात्र, सर्व का प्रकाशक, अभेद रूप, आत्म तत्त्व की हम सदा उपासना (चिंतन) करते हैं॥१२॥

जिसमें सर्व प्रपंच कल्पित है, वह सर्व का आधार कि जिसमें सर्व स्थित है और जो सर्व का वास्तव स्वरूप है और जिसमें सर्व भासते हैं तथा जिसके लिये सब जगत् अत्यन्त प्रयत्न करता है, उस पूर्ण तत्व की हम नित्य उपासना (निश्चय) करते हैं॥१३॥

आकार जिसके आदि में व हकार अन्त में है ऐसे अहं स्वरूप का लक्षार्थ सर्व का सिद्ध करता और पहले कहे सर्व व्यापक अविनाशी सर्व शब्दों से अतीत और सर्व जगत् के बाध द्वारा अद्वैत ब्रह्म तत्त्व की हम निरंतर उपासना (एकता निश्चय) करते हैं॥१४॥

हृदय रूप गुफा में स्थित सर्व सृष्टि का नायक (स्वामि) सर्व का अन्तरात्मा और सर्व प्राणियों के हृदय कमल का भंवरा (अनुस्यूत) उस परमदेव (चैतन्य) मात्र को त्याग करके जो परिच्छिन्न (अल्प) साकार की पूजा (उपासना) करते हैं वह कौस्तुभमणि को त्याग अल्प रत्न की इच्छा करते हैं उनको ज्ञान बन्ध जानों॥१५॥

सर्वाशाः किलसंत्यज्य फलमेतदवाप्यते । येनाशा विष वल्लीनां मूल माला विलूयते॥१६
बुद्ध वाप्यत्यंत वैरस्यंयः पदार्थेषु दुर्मतिः । बध्नातिभावनां भूयो नरो नासौ सगर्दभः॥१७
उत्थितानुत्थितांने तानिंद्रिया हीन्पुनः पुनः । हन्याद्विवेक दंडेन वज्रेणेव हरिर्गिरीन ॥१८
उपशम सुख माहरेत्पवित्रं शम वशतः शममेति साधु चेतः ।
प्रशमित मनसः स्वके स्वरूपे भवति सुखे स्थित तरुत्तमचिराय । १९

हृदयब्रह्म सब आश तज,होवे आतम ज्ञान। मूल वासना होय हत,पूरण आनँद खान ॥
तुच्छ सभीसंसार लख,फिरउसमें सुख मान।दृढ़रागी आसक्तिजो,मनुष्य वपु पशु जान॥
चंचल इन्द्रिय सर्प हैं, ज्ञान लष्ट का मार । शक्रवज्र जिम हते गिरि,कर अपना उद्धार ॥
दुखविक्षेपकेनाशहित सुखलहि आतम रास।शांत अग्निसम चित्तजब,ब्रह्मानन्दहिबास॥

प्रश्न–जिस कर सर्व संशय विपर्य्य नष्ट होवें, सो अभ्यास कहियेगा ।

उत्तर–सम्पूर्ण वासनाओं (मूल विपर्य्य) को त्याग करके हृदय में स्थित ज्ञान स्वरूप ब्रह्मात्मा को विद्वान् अभेद रूप से निश्चय करते हैं जिस परमानन्द के एकत्व रूप लाभ (प्राप्ति) करके, सर्व वासना जाल से युक्त हृदय में भरा हुआ सर्व विपर्य्य मूल सहित नाश होकर, ज्ञानी कृत कृत्य होता है ॥१६॥

अनात्म देह आदि जगत् के सर्व पदार्थों में नीरसता (सत्य व सुख बुद्धि) त्याग देनी चाहिये परन्तु अविचारी मनुष्य दुःख रूप संसार के पदार्थों में आसक्त हुए सर्व प्रकार से बंधे रहते हैं उनकी दुर्दशा अकथनीय है ॥१७॥

जब-जब इन्द्रियाँ रूप सर्प चंचल होवें तब-तब उनको विचार रूप दण्ड से ऐसे बध (नाश) करो, जैसे इन्द्र का वज्र पर्वतों को नष्ट करता है, अर्थात् जब तक त्रपुटि का सर्वथा अभाव होवे तब तक अभ्यास करते रहना उचित है ॥१८॥

वाह्य चक्षु आदि और अन्तर मन आदि की सत्यता को विचार द्वारा दूर करके और दुःख रूप सर्व संसार का बाध निश्चय करके आत्मानन्द का अभ्यास नित्य करना चाहिये । ध्येय वासना (तीनों भ्रांति) को त्याग कर शान्त पद में स्थित हुए विद्वान् की अद्वैत ब्रह्मात्म तत्त्व में दृढ़ निष्ठा होती है, वह जीवित काल में ही कैवल्य निर्वाण पद में विश्राम पाता है, और वेद शास्त्रों के अन्तिम निचोड़ को पाकर कृत कृत्य हुआ संसार को भी पावन करता है ॥१९

असंगता प्रकार विभास (१८)

न जायते म्रियते वाकदाचिन्नायं भूत्वा भविता वानभूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोयंपुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥१॥
अनंतमव्यक्त मनादि मध्य मात्मानमालोक्य संविदात्मम्।
संविद्वपुः स्फारमलब्ध दोषमजोसि नित्योसि निरामयोसि ॥२॥
यस्यनाहं कृतो भावो बुद्धिर्यस्य नलिप्यते। हत्वापि सइमाँल्लोकान्न हंति न निबध्यते ॥३
कलना कर्मणिरते मनस्यपि महात्मनः। न कश्चिदत्राहमिति क्लेश भागेक एवते ॥४

जन्म मृत्यु बिन आतमा, उत्पति हुआ न होग। धारो निश्चय अमर नित, विनशें संशयरोग
अणु अभेद अनंतलख, आदि अंतगतशून। रहित विकारहि दोषबिन, आतम् अधिक न ऊन
तज हिंसा हंकार सब, लेप नहीं उरमांहि। मारे सगरी सृष्टि को, मारत मरता नाहि ॥
करे कर्म सब प्रीति मन, नहिं उर में हंकार। उत्तम आशययुक्त जन, क्लेश शोच नहिं धार॥

प्रश्न—सर्व वेद, वेदान्त का सार जो असंगता दृष्टि है, वह आत्म बोध की दृढ़ता के लिये मैं सुनना चाहता हूँ, कृपा करके प्रकाशित कीजिये।

उत्तर—असंगता पर एक पूर्व का व्याख्यान है वह मुनीश्वर वसिष्ट व श्रीराम जी का सम्वाद है।

मुनीश्वर बोले, हे रामजी! द्वापर के अन्त में युद्ध के अवसर पर श्रीकृष्णचन्द्र अर्जुन के प्रति ज्ञान का उपदेश करेंगे, वह मैं वर्तमान की नाईं तुमको सुनाता हूँ ॥

दोनों सैनाओं के मध्य धर्म पक्ष में विमोहित व आत्म विचार (ज्ञान) से गिरा हुआ अर्जुन, अधीर व कायर बनकर, युद्ध से जब हट बैठेगा, तब भगवान कहेंगे कि हे शारदूल अर्जुन ! तू धर्म अधर्म की गति को और आत्मा के यथार्थ स्वरूप को नहीं जानता, इसलिये अनुचित आग्रह करता है ॥

यह युद्ध श्रेयकर तेरा परम धर्म बड़े भागों से प्राप्त हुआ है और जिन बान्धवों के लिये तू विलाप करता है सो वृथा है। आत्मा न जन्मता है न मरता है, न भूत में जन्मा और न आगे उत्पन्न होगा ॥१॥

सर्व भेदों से अतीत, सनातन, अव्यक्त और आदि, मध्य, अन्त से रहित चैतन्य रूप, अजन्मा, आनन्द स्वरूप, ब्रह्म को तुम आत्मा जानों ॥२॥

मारते समय जिसके अहंता नहीं होती, वह सर्व जगत् को मारे तब भी वह मारता नहीं और असंग हुआ बन्धन में भी नहीं पड़ता ॥३॥

कर्तृत्व, भोक्तृत्व बुद्धि से रहित असंग दृष्टि होकर हर्ष, विषाद का अवसर कहाँ है? अतः स्वधर्म रूप युद्ध में कायरता करना अनुचित है ॥४॥

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिंद्रियैरपि । योगिनः कर्म कुर्वन्ति संगं त्यक्त्वात्म शुद्धये॥५
अहंत्व विष चूर्णेन येषाँ कायो न मारित । कुर्वन्तोपि हरंतोपि न चते निर्विषूचिकाः॥६
मूर्खस्यापि स्वकर्मैव श्रेयसे किमुसन्मतेः । मतिगलदहंकारा पतितापि न लिप्यते ॥७
शांत ब्रह्मवपुर्भूत्वा कर्म ब्रह्म मयंकुरु । ब्रह्मार्पण समाचारो ब्रह्मैव भवसि क्षणात् ॥८

कर्त्ता इन्द्रिय बुद्धि मन, आतमशोधन हेतु । संग भ्रांति दो मूल तज, योगी ज्ञानहि चेत॥
अहं चूर्ण विष परिहर,सुख दुख करते भोग।सब विषूचिका रोग हत, विद्वानहि नित योग
हंता ममता रहित हो करे सर्व व्यवहार। लौकिक वैदिक कर्म सब, रहि अलिप्त संसार
स्वयं शांति हो ब्रह्म वपु, ब्रह्म कर्म सब मान । फुरणा आतम कर्मकर,होइ ब्रह्म वह जान॥

प्रश्न—असंगता के विचार को अति स्पष्ट रीति से पुनः वर्णन कीजिये कि जिससे मेरे सर्व संशय, विपर्य्य दूर हों और स्वरूप को निश्चय करके कृतार्थ होऊँ ।

उत्तर—आत्म ज्ञान की सिद्धि अर्थ योगी (विद्वान्) देह, इन्द्रियाँ, मन, आदि कर अपने-अपने बर्तावों को करते भी असंग निश्चय द्वारा सर्व बन्धनों से मुक्त होते हैं ॥५॥

स्थूल देह जड़ विकारी है और इन्द्रियाँ भी आत्मा नहीं हो सकतीं, किंतु एक-एक के नष्ट होने पर आत्मा विद्यमान रहता है, प्राण क्रियात्मिक जड़ होने से आत्मा से न्यारे हैं, तथा मन बुद्धि भी भूतों का कार्य अचैतन्य विकारी है, इनको सिद्ध करता मैं न्यारा हूँ ।

इस सर्व समाज में जब कोई अपने प्रतिकूल होता है तब दोष दृष्टि द्वारा आत्मा इनसे उदासीन होता है और मन, बुद्धि आदि के सात्विक, राजस, तामस भावों व इनकी विपरीपता को जानने वाला आत्मा (साक्षी) इनसे विलक्षण है ॥६॥

अपना किया हुआ धर्म मूर्खों को भी जब कल्याणकारी है तब विद्वानों की कथा ही क्या ? देह आदि में उनको अहंता (संग) त्याग करने पर कोई पुण्य, पाप स्पर्श नहीं करता ॥७॥

अपने को असंग शान्त स्वरूप निश्चय करके सर्व कर्मों को ब्रह्मरूप जान कर देह, मन आदि में मिथ्या रूप अहंकार को दूर करो । तात्पर्य यह है कि मेरा शरीर, मेरे प्राण, मेरी इन्द्रियां, मेरा मन, मेरी बुद्धि, यह अनुभव सर्व के सिद्ध है । मेरा शब्द अपने से भिन्न को जनाता है जैसे मेरा धन, मेरा गृह, मेरा देश इत्यादि । अपने (आत्मा) से भिन्न देह, इन्द्रियां मनादि अचैतन्य असत्य हैं, इस प्रकार की युक्तियों व अनुभव कर स्वात्मा का असंग निश्चय करना (विज्ञान) कल्याणप्रद है ॥८॥

तद्बुद्धोगं विंदुर्ज्ञानं योगं च कृत बुद्धयः । ब्रह्म सर्वं जगदहं चेति ब्रह्मार्पणं विदुः ॥९
भावोऽहमिति कोप्येष प्रत्येक मुदितश्रितेः । कोटि कोट्यंशकल्पितः कश्चैनं प्रति ग्रहः॥१०
इति ज्ञात विभागस्त बुद्धौ तस्य परिच्छयः कर्मणां यःफल त्यागस्तं सन्यासं विंदुर्बुधाः॥११
सामान्यं परमं चैव द्वेरूपे विद्धि मेनघ । पुष्पादि युक्तं सामान्यं शङ्ख चक्र गदाधरम्॥१२

नाश होय अज्ञान जब, ब्रह्मचित्त वृतिरूप । ब्रह्मातम है जगत सब, अर्पण ब्रह्म अनूप ॥
कोटिन कोटी अंश से, बहुत जीव विस्तार । अहं भ्रांति को त्याग के, ब्रह्मातम यह सार॥
पूर्व कथित अभ्यास से, अहं मेर नैरास । कर्त्ता भुक्ता बुद्धि तजि, विदुष कहैं सन्यास ॥
गौण मुख्य दो रूप मम, चतुर्भुजी साकार । धारूँ आयुध पाणि में, सामान्यहि दृष्टार॥

प्रश्न—चैतन्य ब्रह्मात्मा का जड़ बुद्धि की वृत्ति से ज्ञान कैसे हो सकता है ?

उत्तर—अविचार (अज्ञान) की निवृत्तक बुद्धि वृत्ति को ज्ञान कहते हैं, अर्थात् सर्व जगत् को बाध करके अद्वैत ब्रह्म मैं हूँ इस विचार की दृढ़ता को पण्डित राजयोग रूप समाधि अथवा ब्रह्मार्पण वर्णन करते हैं ॥९॥

ब्रह्म के कोटान कोटि अंश में, कल्पित देह आदि पदार्थों में अहंता, ममता रूप अध्यास मिथ्या है, किंतु गुण ही गुणों में परस्पर वर्तते हैं, ब्रह्मात्मा असंग निर्विकार सदा सत्य स्वरूप है ॥१०॥

सारासार को जानने वाले पुरुष बाह्य वासनाओं को त्याग सर्व कर्मों के फलों को असत्य समझते हैं, इस निश्चय को बुद्धीश्वर सन्यास कहते हैं ॥११॥

श्री कृष्णचन्द्र वर्णन करते हैं कि हे प्राण प्रिय अर्जुन ! सामान्य (अपर) व विशेष (पर) मेरे दो रूप हैं, शंख चक्र आदि को धारण कर्ता मेरा अपर रूप है और निराकार, निर्गुण मेरा विशेष (पर) रूप है उस निर्गुण ब्रह्म को जो अज्ञानी नहीं जानते उनके लिये साकार पूजा (आराधना) संभव है, परन्तु उत्तम विद्वान् मेरे निर्गुण स्वरूप को निश्चय करते हैं । हे अर्जुन ! साकार को गौण व निर्गुण को मेरा मुख्य रूप समझो । मुनि अष्टावक्र भी कहते हैं कि साकार मिथ्या व निराकार सत्य है और श्रीरामजी भी प्राण प्रिय लक्ष्मण को निराकार, निर्गुण का उपदेश करते हैं, इससे स्पष्ट हुआ कि निराकार (निर्गुण) ब्रह्म ही विद्वानों को अभीष्ट है ॥१२॥

यावदप्रति बुद्धस्त्वमनात्मज्ञतयास्थितः। तावच्चतुर्भुजाकारदेव पूजा परो भव ॥१३
तत्क्रमात्संप्रबुद्धस्त्वं ततोज्ञास्यसि तत्परम्। ममरूपमनाद्यं तंयेन भूयो न जायते ॥१४
परंरूपमनाद्यंतं यन्ममैकमनामयम्। ब्रह्मात्म परमात्मादि शब्देनैतदुदीर्यते ॥१५
सर्व भूतस्थमात्मानंसर्व भूतानि चात्मनि। पश्यत्वं योग युक्तात्मा सर्वत्र सम दर्शिनः॥१६

अज्ञ दशा में जबी लग, पूजो तुम साकार। निराकार दृष्टे नहीं, निर्गुण जगदाधार॥
होइ प्रबोधहि जानियो,निराकार पर रूप। आदि अंत बिन ब्रह्म लखु, होवेंमुक्त स्वरूप॥
आदि अंत बिन एक मम,आनंदहि जगदीश। ब्रह्म आत्म इसशब्द कर,कहते वेदमुनीश॥
अधिष्ठान है सर्व गत, सृष्टी कल्पित जान। राज योग से ब्रह्म लखु, समदर्शी हो ज्ञान॥

प्रश्न—भगवद्गीता विशेषतया सबको इष्ट है, सब इसके यथार्थ भाव को समझते हैं वा नहीं?

उत्तर—भगवद्गीता के व्याख्यान वर्त्तमान में पक्षपात पूर्वक विशेषतया होते हैं, इसलिये यथार्थ रहस्य जानना कठिन हो रहा है, अर्थात् कर्मकाण्डी सर्व को कर्मों में व उपासक सगुण भक्ति में और वेदान्ती केवल ज्ञान में गीता का व्याख्यान करते हैं। उचित तो यह है कि जैसा प्रसंग विद्यमान हो वैसा वक्तव्य करना चाहिये, यह क्रम ज्ञानेश्वरी गीता में यथार्थ है, वह उत्तम अर्थों सहित सबको उपयोगी है। श्रीकृष्णचन्द्र स्वमुखारविन्द से कहते हैं कि हे अर्जुन! जब तक तुम अबोधात्मा हो तब तक मेरे चतुर्भुज गौन (अपर) स्वरूप की आराधना करो। हेतु यह है कि मेरा पर रूप अज्ञान दशा में अलक्ष्य होता है ॥१३॥

साधन आदि क्रम से जब तुम सुबोध होवेगे तब मेरे निर्गुण रूप को विचार द्वारा निश्चय कर परम पद को प्राप्त होकर कैवल्य भाव को प्राप्त होगे ॥१४॥

उत्पति, विनाश आदि विकारों से रहित, अद्वैत, निराकार, परमानन्द व्यापक स्वरूप को वेद, वेदान्त आत्मा, ब्रह्म, तरमात्मा इत्यादि शब्दों से वर्णन करते हैं, इस पद को पाकर जन्म, मरण का अभाव होता है ॥१५॥

राजयोग रूप समाधि में स्थित होकर ब्रह्मात्मा को सर्व भूत, भौतिक में व्यापक और परमात्मा में सर्व भूत प्राणियों को कल्पित देखो ऐसी दृष्टि संयुक्त विद्वान् समदर्शी, भगतों में उत्तम गिना जाता है। हे अर्जुन! सर्व निगम, आगमों का तत्त्व (सार) तेरे हितार्थ मैंने स्पष्ट किया है ॥१६॥

एकत्वं सर्वशब्दार्थं एकशब्दार्थं आत्मनः।आत्मापि च न सन्नासद्गतो यस्याशुतस्यतत्॥
यथा कुंभसहस्राणां न बाह्याभ्यांतरे नमः। जगत्त्रय शरीराणां तथात्माहमवस्थितः॥१८
सर्व भूतस्थमात्मानं सर्व भूतानिचात्मनि। यः पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति॥१९
नासतोविद्यते भावो नाभावो विद्यतेसतः।नास्त्येव सुखदुःखादि परमात्मास्ति सर्वगः॥२०

नाम रूप में एकलखु, शब्द अर्थ हैं एक। सत्य असत्यहि अनूगत, कल्पित रूप अनेक॥
सहस्र जैसे घटों में, आकाशहिअनसूत। तैसे देहों मध्य वपु. चिद् पूरण सम सूत॥
निजमें कल्पित भूत सब, भूत आतममधि जान। कर्त्ता भुक्ता ब्रह्म नहिं,जानें सब विद्वान॥
असत पदार्थहि भावकब,नहीं सत्यकी हान। अनुगत है परमातमा,मिथ्यादुःखसिरान॥

प्रश्न—सर्व जगत् को ब्रह्मात्मा में कल्पित और ब्रह्म को सर्व भूतों में व्यापक जानने का जो प्रभाव है, वह सुनाइये, हेतु यह है, कि सब वेद, शास्त्रों में इसी अर्थ की विशेषतया प्रशंसा वर्णन की है।

उत्तर—ब्रह्मात्मा को सर्वत्र अनुस्यूत (पूर्ण) और संसार को मिथ्या निश्चय करने पर, जीव सब दुःखों से छूटकर परमानन्द स्वरूप निर्वाण पद को प्राप्त होता है, इसीलिये भगवान् भी इसी भाव को बारम्बार वर्णन करते हैं, अर्थात् नाम, रूपात्मिक सब भूतों में एक आत्मा को और सर्व शब्दार्थों में अधिष्ठान रूप पूर्ण अद्वैत ब्रह्म को निश्चय करो, जिस ज्ञानी को स्थूल सूक्ष्म रूप सर्व भूतों में अधिष्ठान ब्रह्मात्मा का अनुभव होता है वह आनन्द की सीमा को पाता हुआ अन्तिम कैवल्य भाव को प्राप्त होता है॥१७

जैसे सहस्र घटों के भीतर, बाहर एक आकाश स्थित है तैसे त्रिलोकी में सम्पूर्ण देहों के अन्तर, बाहर मैं चिदात्मा अधिष्ठान रूप से स्थित हूँ, अतः सर्वात्म रूप ब्रह्म अलक्ष्य, (छिपा) नहीं॥१८॥

जो विद्वान् आत्मा में सर्व भूतों को और सम्पूर्ण भूतों में स्थित अकर्त्ता आत्मा को जानता है, वही यथार्थ ज्ञानी है, शास्त्रों में और भगतों में शिरोमणि वर्णन किया है॥१९॥

असत्य जगत् कभी सत्य नहीं होता और सत्य स्वरूप ब्रह्मात्मा का कदाचित अभाव नहीं होता, इसलिये सर्व में पूर्ण, सत्य स्वरूप परमात्मा नित्य अद्वैत विद्यमान है इससे यह स्पष्ट हुआ कि जड़, दुःख रूप जगत् तीनों कालों में सत्य नहीं और सच्चिदानन्द रूप ब्रह्मात्मा सदा विद्यमान, अपरोक्ष है, यह सर्व विद्वानों को दृढ़ निश्चय होता है॥२०॥

विश्वग्विश्वमजं ब्रह्म न नश्यति न जायते । इति सत्यं परं विद्धि बाधः परम एष सः ॥२१
ब्रह्माऽब्धौ तरंगत्वं किंचिद्भूत्वा विलीयते।ब्रह्मावर्त्ते स्फुरस्यद्य ब्रह्मैवासि निरामयम्॥२२
जहि मानंमदं शोकं भयमीहां सुखासुखे। द्वैत मेतद् सद्रूपमेकः सद्रूपवान भव ॥२३
अनपेक्ष फलं ब्रह्मभूत्वा ब्रह्मेति भावितम् । क्रियदे केवलं कर्म ब्रह्मज्ञेन यथा गतम्॥२४

ब्रह्मपूर्ण है जगत सब,उत्पति रहित विनाश । सत्य सर्व में ब्रह्म लखु,विज्ञानहि यह राश॥
वारिध ब्रह्म तरंग हो, जगत जीव समुदाय । वाह्य दृष्टि से उदय लय, निर्विकार ज्ञानाय॥
गर्व क्रोध मद शोकभय,असत दुःख सुख जान।द्वैत रहित अद्वैत तुम,यहनिश्चय विज्ञान॥
फल कर्मों की वासना, सबको ज्ञानी त्याग । ब्रह्म स्वयं यह जान के, करे कर्म अनुराग॥

प्रश्न–ब्रह्मज्ञान का स्वरूप मेरे कल्याण के लिये स्पष्ट वर्णन कीजिये।

उत्तर–सम्पूर्ण संसार को मिथ्या जानकर एक व्यापक ब्रह्म है, वह न उदय होता है और न अस्त, इस विचार की दृढ़ता को विज्ञान कहते हैं॥२१॥

ब्रह्म रूप समुद्र में जीव, ईश्वर, आत्मिक जगत् तरंगों के तुल्य उत्पन्न होकर विलय होता हुआ वर्तमान काल में भासता है, इसलिये सर्व आकार कल्पित हैं, ऐसे दृढ़ विचार होने पर निराकार ब्रह्मात्मा का अद्वैत ज्ञान प्राप्त होता है, जैसे जल में फुरण शक्ति है तैसे देश, काल, क्रियात्मिक सब जगत् ब्रह्म में स्फुरण होते हैं वास्तव से अद्वैत शान्त स्वरूप ब्रह्म में भाव, अभाव मय सर्व पदार्थ तीनों कालों में सत्य नहीं ॥२२॥

अहन्ता, ममता, चिंता, शोक आदि असत्य वासनाओं को निवृत्त करके सुख, दुःख की सत्ता को भी हृदय से त्याग दो, क्योंकि सब जगत् बाध द्वारा ब्रह्म स्वरूप है, इसलिये हे अर्जुन ! तुम अद्वैत पद को निश्चय करो अर्थात् लाभ, अलाभ व जय, पराजय को मिथ्या जान करके शुद्ध ब्रह्म को अपना स्वरूप जानो ॥२३॥

ब्रह्म ज्ञानी कर्मों के फल की इच्छा को त्याग, स्वरूप के अभ्यास द्वारा अक्रिय ब्रह्म को निश्चय करके सर्व कर्मों को करता हुआ, नित्य अकर्त्ता है, यह असंगता ही भगवद्गीता का सिद्धान्त है । कर्म किये बिना जीव एक क्षण भी स्थित नहीं रह सकता; प्रकृति ज्ञानी, अज्ञानी सबको कर्मों में जोड़ती है, परन्तु क्रियाओं में कर्त्ता, भोक्ता बुद्धि को त्यागकर विद्वान् बँधता नहीं, इसी निश्चय को विज्ञान कहते हैं । इस प्रकार जो सज्जन उपनिषद् रूप भगवद्गीता का उद्देश्य समझता है, वही इसके यथार्थ तत्त्व को जानता है॥२४॥

त्यक्त्वा कर्म फलासंगं नित्यतृप्तो निराश्रयः। कर्मण्यभि प्रवृत्तोपि नैव किंचित्करोति सः॥२५
अकर्तृत्वाद् भोक्तृत्वम भोक्तृत्वात्समैकता। समैकत्वादनंतत्वं ततो ब्रह्मत्व मासतन्॥२६
किमुत्थादेव देवेश क्षीयतेवासना कथम्। मौर्ख्यमोह समुत्थानात्वनात्मन्यात्म भावना॥
आत्मज्ञानान्महा बोधाद्विलयं याति वासना॥ २७॥

दुर्दर्शनस्य गगने शिखिपिच्छिकेवशूदमा परिस्फुरति यस्य तु वासनांतः।
मुक्तः स एव भवतीहहि वासनैव बन्धोन यस्य ननुतत्त्वय एव मोक्षः॥२८

संग कर्मफल आशतजि, नित्यब्रह्म निरधार। यथाउचित व्यवहारसब, क्रियाहीन वपु सार॥
नाहीं कर्त्ता भोगता, तिसकर, समता होइ। समदर्शी लहिं एकता, ब्रह्मरूप लखु सोइ॥
जगत वासना उदय किम, कैसे होय विनाश। होय अनातम ज्ञानकर, ब्रह्मज्ञान से नाश॥
बिन जाने सिद्धान्त के, माया ढके स्वरूप। नशें वासना ज्ञानसे, बंध मोक्ष को रूप॥

प्रश्न—मेरे बोध के दृढ़ार्थ सर्व भगवद्गीता के सारको संक्षेप से कहिये।

उत्तर—शुभाशुभ कर्मोंका कर्त्ता और उन कर्मों के फल (सुख, दुःख) का भोक्ता मैं हूँ, इस विपर्य्य बुद्धि को त्यागकर पतित प्रवाह (प्रारब्धानुसार) जो कुछ आप्राप्त हो संग भ्रम को छोड़ करके अपने २ कर्त्तव्यों को यथोचित करो, अर्थात् लौकिक, वैदिक सम्पूर्ण व्यवहारों को करते हुए, अन्तर निश्चय से सर्व चेष्टाओं को स्वप्न के तुल्य मिथ्या जान करके सदा अद्वैत ब्रह्मनिष्ठा करना उचित है, यह भगवद्गीता का प्रबल सिद्धान्त है इस अर्थ को निश्चय नहीं करके और प्रयत्न व भाव समझना अज्ञान मूलक है॥२५॥

हे अर्जुन! अपने आत्मा को अकर्त्ता निश्चय करने पर भोक्ता भी नहीं रहता, इसलिये अहंता, ममता की भावनाको और नानत्व रूप भेद वासनाओं को त्याग करके, यथा प्रारब्ध चेष्टाओं को करते हुए तुम मुक्त स्वरूप होगे॥२६॥

अर्जुन पूछता है कि हे भगवन्! कर्त्ता, भोक्ता आदि विपर्य्य वासनाएँ क्यों उदय होती व कैसे वृद्धि पाती हैं और इनकी निवृत्ति किस प्रयत्न से होवेगी? श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं कि हे तात! अपने स्वरूप के अज्ञान से ही अनात्म पदार्थों में अहं मम आदि विपर्य्य वासनाएँ उदय होती व तिन्हीं में आसक्ति करने से बढ़ती हैं और तत्त्वज्ञान के होनेपर मूल सहित नष्ट होती हैं।२७।

माया आदि कर आच्छादित हुए मनुष्यों के हृदय में अनेक प्रकार की राजस, तामस वासनाएँ प्रगट होकर बन्धन रूप होती हैं और ब्रह्म ज्ञान की दृढ़ता से ध्येय (मूल) वासनाएँ निवृत्त करने पर अधिकारी कैवल्य भाव को प्राप्त होता है। मेरा सिद्धान्त यही है कि वासना कर बन्धन है और त्याग होने पर विद्वान् जीवन्मुक्त होता है॥२८॥

प्रवाह पतितं कार्यमिदं किंचिद्यथागतम् । कुरु कार्याणि कर्माणि न किंचिदिह नश्यति॥२६
प्रवाह पतितं कर्म स्वमेव क्रियते तुयत्। जीवन्मुक्त स्वभावोयंसा जीवन्मुक्तता तथा॥३०
प्रवाह पतितं कर्म कुर्वतःशांत चेतसः । जीवन्मुक्ताः सुषुप्तिस्थाः स्फुरंत्यत्र सुषुप्तवत् ॥३१
पश्चाद्धितिःकृता व्योमरूपा चासा वहो भ्रमः । अपूर्वं वातिमायेयं तृण कुड्यमयैशुभा ॥३२

यज्ञयुद्ध सब कर्मकर,प्रारब्धहि अनुमान । सभी कर्म कर यथा विधि,ब्रह्मज्ञान नहिं हान॥
जीवन्मुक्त प्रारब्धवश, करते कर्म अनेक । जीवन्मुक्त स्वभाव लखु, मुक्त शांत निज टेक॥
कर्मयथा प्रारब्धसब, संशय नहिं विक्षेप । जीवन्मुक्त सुषुप्तसम, जगत फुरण नहिं लेप ॥
समष्टमन के कामसत, वपु अनन्त विस्तार । बलवरमाया चित्रसब, भ्रांती बहु संसार॥

प्रश्न—बहुत लोग विद्वानों के लिये भी साधनों का कर्त्तव्य (व्यवहारों का विशेषनेम) बताते हैं, जो वेद, वेदांतका सिद्धांत है, वह स्पष्टतापूर्वक वर्णन कीजिये ।

उत्तर—ब्रह्मज्ञान की दृढ़ता होने तक शास्त्रों के विधि, निषेध रूप कर्त्तव्य अवश्य मानने चाहिये, पश्चात् विद्वान् पतित प्रवाह (प्रारब्धानुसार) सर्व व्यवहारों को करता है, अर्थात् संशय विपर्य्य से रहित ज्ञानी आकाश के तुल्य विशाल व गम्भीर निश्चयवाला हुआ स्वप्रारब्धानुसार यज्ञ व युद्ध आदि सर्व व्यवहारों को करता है, ऐसा जानकर तुम्हारे स्वरूप में कुछ हानि, लाभ नहीं होगा ॥२६॥

पतित प्रवाह (प्रारब्धानुसार) वैदिक, लौकिक सम्पूर्ण कार्यों को निःशंक (संशय रहित) करना जीवन्मुक्तों का स्वभाव है । अर्थात् जीवन का साधक शरीर यात्रा करते हुए स्वात्मा को अकर्त्ता, अभोक्ता निश्चय करना यह जीवन्मुक्तों का लक्षण है, और वेद, वेदांत में गौणी वृत्ति से जीवन्मुक्तों को अन्ध, मूक, जड़वत् वर्णन किया है ॥३०॥

जीवन्मुक्त यथा प्रारब्ध सर्व कार्यों को करते हुए सुषुप्ति के तुल्य (अद्वैतनिष्ठा) होकर संसार में विचरते हैं । यह कर्म मैं करूँ और यह मैं न करूँ, इस कर्त्तव्य बुद्धि को हृदय से त्यागकर ब्रह्म निश्चय विद्वान् समचित् (अद्वैत ब्रह्मात्म दृष्टि) से जीवन्मुक्त पद को प्राप्त होता है ॥३१॥

समष्टि मन (हिरण्यगर्भ) के सत्य संकल्प से सर्व स्थूल रूप जगत् की रचना होती है, अनन्त आकाश के तुल्य सर्व के आधाररूप अनुभव सत्ता में अनेक पदार्थों की कल्पना होती है, अहो कैसा आश्चर्य है कि प्रबल, विचित्र माया तुच्छ हुई भी भ्रांति दशा में विस्तार पाती हुई सुशोभित होती है।३२।

रोध्यरोधक संमोहंत्यक्त्वा रवेविमलो भवाप्रवृत्ति रेवनःयोम्नःप्रवृत्तिश्चैवस्वात्मिका॥३३
आत्मा जगत्तथैवेदं स वाह्याभ्यतरंनभः। चिरंतन मनोराज्यं यत्तस्मात्किल सत्यता॥३४
आकाश एव रचिता प्रतिमैकरंगा मुग्धा जगन्त्रयमनोहर पुन्त्रिकेयं।
चिन्मात्र चक्र परिरंजित सर्वलोका लीलाकुला चपल चित्तकचित्रकर्त्री॥३५॥
अभिता बुत्थिते चित्रे दृश्यतेभित्ति राततो।अहोविचित्रामायेयंमग्नंतुं वशिलाप्लुता॥३६

बध्य घात का शोचतजि,निर्मलचिद् आकाश। नहींक्रिया चिद्काशमें,ब्रह्महोइसुखराश॥
हो वाह्यांतर जगतमन,सृष्टी स्वप्न असत्त। काल अधिक अभ्यासते, भासे मिथ्यासत्त॥
शाला नटनी बुद्धि वृत्ति,चक्र रचे संसार। हाव भाव दर्शाय सब,चिदाकाश आकार॥
बिनाभीत आकार यह,रचना जगत अपार। माया शक्ति देख वपु,स्वप्न सांवरी धार॥

प्रश्न—मैं मारता हूँ व मरूंगा यह फुर्णा विद्वानों में बन सकता है वा नहीं?

उत्तर—इस अर्थ को श्रीकृष्ण स्पष्ट वर्णन करते हैं कि हे अर्जुन! तुम वध्य व घातक (मरता, मारता) भ्रम को त्याग कर निर्विकार, शुद्ध चिदाकाश दृष्टि करो। कारण यह है कि वध्य, घातक आदि व्यवहार चैतन्य आत्मा में तीनों कालों मध्य सम्भव नहीं और आत्मा में जन्म, मृत्यु व हानि, लाभ जो भासते हैं वह स्वप्न के तुल्य मिथ्या (असत्य) हैं, वास्तविक दृष्टि से चैतन्य आत्मा अच्युत, अद्वैत है॥३३॥

मनरूप माया व तिसका रचा हुआ जगत्, सब शून्य (तुच्छ) है, स्वप्न के तुल्य इस दृश्य में सत्य बुद्धि को त्यागकर स्वरूप में स्थित हो, अर्थात् अनादि प्रतीत होता भी सर्व प्रपंच परमार्थ दृष्टि से अत्यंताभाव रूप है, सत्य नहीं। भगवान् वर्णन करते हैं कि जैसे चितेरा भीत पर नाना मूर्तियां लिखता है तैसे ही मनरूप चित्रकार ने सर्व पदार्थ रचे हैं मन की कल्पना मिथ्या है॥३४॥

स्वप्न की नांई अनहुये जगत् को रचने वाली बुद्धि रूपी नृत्तका (वैश्या) है, वह घूमते हुये तीक्षण चक्र के समान वृत्तियों द्वारा संसार को रचती है, इन सम्पूर्ण वृत्तियों व प्रपंच के अन्तर साक्षी आत्मा सर्व को सिद्ध करता (प्रकाशक) है॥३५॥

आधाररूप कारण के विना भ्रम दृष्टि से जगत् रूप चित्र पहिले दीख पड़ते हैं, उसके पीछे त्रिगुणात्मिक प्रकृति भासती है, जैसे स्वप्न के समुद्र में अथवा इन्द्रजाल के तालाब में कोई डूबा, फिर किसी ने उसको उबार लिया यह सर्व घटना जैसे असत्य हैं, तैसे माया (अविद्या) कर भासित हुआ सब दृश्य असत्य है, इसको अज्ञानी सत्य मानते हैं॥३६॥

सर्वंव्योम कृतंव्योम्नाव्योम्नि व्योमविलीयते.भुज्यते व्योमनिव्योम व्योमव्योमनिचाततम् ·
अनन्यच्छेभेदादि ब्रह्मणि ब्रह्मणां वरम् । किकथं कस्य केनैवच्छिद्यते वाक्यभिद्यते॥३८॥
सर्वज्ञोप्यति बद्धात्मापंजरस्थो यथा हरिःयस्यास्ति वासनाबीजमत्यल्पंचिति भूमिगम्॥३९
शांतात्मा विगत भयोज्झितामिताशो निर्वाणो गलित महामनो विमोहः
सम्यक्त्वं श्रुतमवगम्यं पावनंतत्तिष्ठात्मन्यप हृतिरेक शान्ति रूपः ॥४०॥

आत्म चिदआकाशजग,लयहो ब्रह्माकाश। चिदाकाशफल भोगता,सब व्यापकचिदकाश॥
भेदछेद नहिं ब्रह्मगत,मिथ्या हों आभास। करे कौन हो किसीविधि,भेद भरमनहिंवास॥
पुरुष मध्य सर्वज्ञ उर, ध्येय वासना होई। सिंह पींजरे बंद जिमि, नहीं छुड़ावे कोइ॥
ध्येय वासना त्याग सब, शोक मोह विसराय। होवे निर्भय शांत मन, मुक्तिब्रह्म पदपाय॥

प्रश्न—सर्व ब्रह्म निश्चय होने के लिये कैसा अभ्यास करना चाहिये ?

उत्तर—सब जगत् में चिदाकाश (पूर्ण चैतन्य) है अर्थात् परमार्थ से एक शुद्ध चैतन्य में प्रतीत हुआ जगत् स्वप्न सृष्टि के तुल्य उदय अस्त होता है परन्तु वास्तव से एक चिदाकाश ही सर्वत्र प्रकाशमान है, यानी चैतन्य आत्मा ही सर्व व्यापक, सत्य स्वरूप है, और जैसे तरंग, चक्र आदि सब विकार एक जलरूप हैं तैसे उत्पति, विनाश आदि सब विकार अद्वैत चिदाकाश हैं ॥३७॥

छेदन, भेदन आदि सब व्यवहार सहित जगत् ब्रह्मात्म में कल्पित है अतः सर्व जगत् के बाध द्वारा अद्वैत, निर्विकार आत्मा ब्रह्म है तब कौन किसको भेदन, छेदन कर सकता है इससे यह स्पष्ट हुआ कि सब संसार मिथ्या है ॥३८॥

जिसके चित्तरूप भूमि में वासना का बीज (अहंकार) विद्यमान है यदि सिद्ध भी हो तो भी बंधा हुआ है जैसे केशरी सिंह पींजरे में फँसकर दुःख पाता है तैसे ही अहंकार आदि वासनाओं करके संसार में जीव बन्धता है। जब ब्रह्मज्ञान रूप अग्नि प्रज्वलित होवे तब सर्व वासनाओं का कारण अभिमान जलता है, जैसे राजा जनक ध्येय वासनाओं (विपर्य्य) से रहित व्यवहार करता भी असंग रहा अर्थात् यज्ञ, युद्ध आदि सर्व चेष्टाओं में निर्विकार रहा था, इसी प्रकार तुम भी असंग रहो ॥३९॥

सम्पूर्ण विपर्य्य वासना (अहंकारादि) को त्याग कर, हे अर्जुन ! अपने वास्तव रूप (ब्रह्म चैतन्य) में स्थित हो और बान्धवों की आसक्ति से रहित निर्भय शान्त पद को प्राप्त हो करके युद्ध आदि सर्व व्यवहारों को करता हुआ तू सदा निर्लेप रह ॥४०॥

अवशिष्ट सिद्धान्त विभास (१६)

सर्व विशेषं नेति नेति विहाय यदिविशिष्यते तदद्वयं ब्रह्म ।
जीवभाव जगद्भावबाधे प्रत्यगभिन्नं ब्रह्मैवावशिष्यते ॥१॥
कार्योपाधिरयं जीवः कारणोपाधिरीश्वरः । कार्य कारणतां हित्वा पूर्णा बोधोऽवशिष्यते॥२
यावद्यावन्मुनि श्रेष्ठ स्वयं सं त्यज्तेऽखिलम् । तावत्तावत्परा लोकः परमात्मै वशिष्यते॥३
ज्ञेय वस्तु परि त्यागे विलयं याति मानसम् । मानसे विलयं याते कैवल्यमवशिष्यते॥४
ततःस्तिमित गंभीरं न तेजो न तमस्तम् । अनाख्य मनभिव्यक्तं सत्किंचिदवशिष्यते ।५

शेष अशेषहि दूरकर, एक ब्रह्म अविशेष । जीव जगत सब बाधके, आतम ब्रह्म अशेष॥
कार्य उपाधी जीव की, कार्ण उपाधी ईश । कारण कारज त्याग के, बोध पूर्ण जगदीश॥
जिसर को त्यागें मुनी, स्वतः सभी जो और। जितने उत्तम लोक सब,शेष आत्म है ठौर॥
जब त्यागे ज्ञय दृश्यको,मनभी जात विलाय । यह मन होइ विलीन जब,ब्रह्मशुद्ध रहजाय॥
अमित अथाह तेज वपु, तमका नाहीं शेष । नाम अकारहि नहीं कुछ, सत्य रूप अवशेष॥

प्रश्न—जिन २ वेद वाक्यों से जगत् को असत्य वर्णन किया है उन श्रुतियों को मेरे संशय, विपर्य्य की निवृति के लिये प्रतिपादन कीजिये ।

उत्तर—नेति नेति (यह नहीं, यह नहीं) इत्यादि श्रुति वाक्यों कर भाव अभाव व जड़ चैतन्य और नाम, रूप आत्मिक सब जगत् को बाध (मिथ्या) जानने पर सर्व निशेद्ध की अवधि भूत ब्रह्मात्म का निश्चय होता है अर्थात् प्रकृति, विकृति (कारण, कार्य) सम्पूर्ण जगत् का अत्यंताभाव जान करके सब वृत्तियों का प्रकाशक (सिद्ध करता) अद्वैत ब्रह्म चैतन्य शेष रहता है ॥१॥

माया उपाधियुक्त ईश्वर व अविद्या उपाधि वाला जीव है, इन दोनों की मिथ्या रूप उपाधियों के बाध होने पर व्यापक चैतन्य अवशिष्ट (शुद्ध) है ॥२

नाम, रूप और सर्व व्यवहारों युक्त जगत् को विद्वान् बोध दृष्टि से असत्य जानते हैं तैसे मुमुक्षु भी विचार द्वारा सब दृश्य को मिथ्या समझे, इस प्रकार जगत् के अत्यंताभाव निश्चय होने पर शेष एक परमात्मा रहता है॥३

दृश्य को अत्यंत असत्य जान लेने पर मन और चित्त आदि का भी अभाव होता है, इस प्रकार सर्व के मिथ्या निश्चय करने पर केवल अद्वैत, अवशिष्ट ब्रह्म होता है ॥४॥

सर्व मर्यादाओं सहित जगत् को ज्ञान दृष्टि से झूँठा जान लेने पर सत्य रूप अद्वैत वस्तु है यह निश्चय होना ब्रह्म चैतन्य में शेष पना है । इसलिये सब वेद, वेदांत का सिद्धान्त जानकर दृढ़ भावना करना मुक्तिप्रद है ॥५॥

संकल्प मनसी भिन्नेन कदाचन केनचित। संकल्प जाते गलिते स्वरूपमवशिष्यते ॥६
यतो वाचो निवर्तंते विकल्प कलनान्विताः। विकल्प संक्षयाज्जंतोः पदंतदवशिष्यते ॥७
पंचरूप परित्यागादर्थ रूप प्रहाणतः। अधिष्ठानं परं तत्त्वमेकं सच्छिष्यते महत्॥८
सर्व वेदान्त सिद्धान्तसारं वच्मि यथार्थतः स्वयं मृत्वा स्वयं भूत्वा स्वयमेवावशिष्यते॥९
ब्रह्म विष्णवीश्वरायंते महाप्रलय नामनि। शब्दार्थ रूढमापन्ने यच्छुद्धमवशिष्यते॥१०

मन फुरने से भिन्न सब, कभी नहीं जग रूप। मन संकल्पहि नाश कर, रहता शेष स्वरूप॥
वाक नहीं कहि सके जिस, भेद कल्पना रहित। भेद दूर हो जीवका, ब्रह्म एकसो रहित॥
भूत पांचको बाधकर, सत्य बुद्धि को त्याग। अधिष्ठान है सभी एक, सत्यरूप अनुराग॥
सभी भेद सिद्धान्त को, सार रूप में कहित। स्वयं बाधकर आप ही, शेष आप पुनि रहित॥
ब्रह्मा हरिहर शांत सब, महाप्रलय जब होई। शब्द अर्थ नहि रहे कुछ, शुद्ध एक चिदसोइ॥

प्रश्न—जगत् कैसे बनता है, अन्त में किस में विलीन होता है, यह कहिये।

उत्तर—मन के स्फुरण शक्ति से भासित हुआ जगत् मनोमय है, इस प्रकार विपर्य्य वासनाओं के त्यागने पर अवशिष्ट ब्रह्म चैतन्य में एकत्व होता है अर्थात् दृश्यमान सम्पूर्ण संसार ब्रह्म में तीनों कालों में हुआ नहीं।६।

वाणी का अविषय व मन, बुद्धि से अगोचर और भेद भावना से रहित ब्रह्मात्मा को अनुभव करके जीव के हृदय से नानत्व का भ्रम दूर होने पर एक ब्रह्म सत्य रूप से शेष निश्चय होता है ॥७॥

आकाश आदि पांच भूतों व भौतिक रूप प्रपंच को बाधकर जगत् में सत्य बुद्धि को त्याग करके सबके अधिष्ठान अविशिष्ट (शुद्ध) चैतन्य ब्रह्म को अभेद रूप से चिंतन करना योग्य है ॥८॥

यजुआदि चारों वेदों और वेदान्त आदि शास्त्रों का उत्तम सिद्धांत यह है कि ब्रह्म ज्ञान द्वारा परिच्छिन्न (एक देशी) अहंकार को त्याग करके स्वयं प्रकाश अद्वैत ब्रह्म शेष निश्चय होने पर विद्वान् अभय पद में विश्राम पाता है ॥९॥

ब्रह्मज्ञान से होनेवाली अत्यंत प्रलय कहाती है उसमें ब्रह्मा विष्णु और महादेव आदि सर्व जगत् के अभेद होने पर सब शब्द अर्थों में सत्य भावना छोड़कर ब्रह्मात्मा चैतन्य की सत्यता अविशेषपना निश्चय करके कारण, कार्य समस्त जगत् के मर्यादा सहित प्रतीत होते हुए भी अद्वैत अनुभव दृष्टि से विद्वान् सर्व संसार का गुरु और पूजने योग्य होता है अर्थात् शुद्ध चैतन्यात्मा का यथार्थ ज्ञान ही सर्वोत्तम गति है ॥१०॥

सर्गस्य कारणं तत्र न किंचिदुपपद्यते। मलमाकार बीजादि माया मोह भ्रमादिकम् ॥११
केवलं शांत मत्यच्छमाद्यंत परि वर्जितम्। तद्विद्यते यत्र किलखमपि स्थूलमश्मवत् ॥१२
न च किंचन नामांग कंच त्यच्छैव सा स्मृता। चिन्मात्रैकैक कलनं ततमेवात्म नात्मनि॥१३
चिदाकाशश्चिदाकाशे तदिदंस्वमलंवपुः। चित्तंदृश्यमिवाभाति यथा स्वप्ने तथास्थितम्॥१४
तस्मात्सम्यक्परि ज्ञानाद्भ्रांति मात्रंविवेकिनः।सर्गात्यंतासं भवतोयो जीवन्मुक्ततोदः॥१५

सृष्टि उत्पति माय लग,बीजरूप आकार। तीन काल नहिं किसी में,भ्रम मिथ्या विस्तार॥
नामरूप से रहित वपु,वह चिन्मात्रहि देव। वाच्यअर्थ नहीं लक्ष्यवह,किमपावे तिसभेव॥
नहिं विचारसे अन्य कुछ, परम शुद्ध अद्वैत। चेतन लखु परमात्मा, ब्रह्म पूर्ण नहीं द्वैत॥
शुद्ध सच्चिदानंद वपु, होवे तिस अज्ञान। रूप जगत हो भासता, वास्तव अद्वैजान॥
ज्ञानी जनको बोधकर, भासे जगत असत्य। निश्चय जीवन्मुक्तता, चिद्रूपहि लखु सत्य॥

प्रश्न—कारण कार्य जगत् की ब्रह्मरूपता किस दृष्टि से मानी जा सकती है, इस अर्थ को मेरे बोध की दृढ़तार्थ वर्णन कीजिये।

उत्तर—सब संसार की उत्पत्ति का कारण माया है, यह माया रूप भ्रम ही पुण्य, पाप आदि द्वारा प्रपंच को विस्तार करने वाला है, इस भ्रांति दृष्टि से जिधर भी देखा जाता है उधर महान् आडम्बरों सहित सृष्टि रचना भासती है, जब माया रूप कारण ही झूंठा है, तो उसका रचा हुआ जगत् सत्य कैसे माना जावे। संसार का सर्व पसारा एक अधिष्ठान चैतन्य में अनहुआ भासता है, इसलिये केवल सत्य स्वरूप ब्रह्मात्मा की दृढ़ धारणा होने पर विद्वान् कहलाता है ॥११॥

चैतन्य अद्वैत शान्तरूप, अति निर्मल और आदि, अन्त से अतीत, सत्य स्वरूप है, उस शुद्ध चिदसत्ता में आकाश भी स्थूल है ॥१२॥

विचार (ज्ञान दृष्टि) से देखें तब माया, अविद्या व तिनका कार्य कुछ भी सत्य नहीं है किंतु अद्वैत चैतन्य मात्र सर्व कारण कार्य प्रपंच का अधिष्ठान है, इसलिये विचार द्वारा एक चिदसत्ता तुम्हें निश्चय करनी योग्य है ॥१३॥

पूर्ण, शुद्ध सच्चिदानन्द स्वरूप, अद्वैत ब्रह्म है, इस चिदाकाश के प्रमाद (भूलने) पर स्वप्न सृष्टि के तुल्य निर्विकार चैतन्य ब्रह्म में सृष्टि सत्य के समान भासती हुई मिथ्या है ॥१४॥

ज्ञान दृष्टि द्वारा विद्वानों को सम्पूर्ण जगत् का अत्यंताभाव निश्चय होता है, यह अद्वैत बोध ही जीवन्मुक्त पद है ॥१५॥

निर्विकल्पं समाधानं तदनंतमिहोच्यते। यथास्थित मविक्षुब्धमासनं सर्व भासनम्॥१६
दृश्यात्यंतासंभवात्म तदेवाद्यं हि वेदनम्। तत्सर्वं तत्रकिंचिच्चतद्बुद्धेवांग वेत्तितत्॥१७
काकतालीय बत्पश्चादविद्या क्षय आगते।प्रपश्यत्यात्म नैवात्मा स्वभावस्यैव निश्चयः॥१८
यत्र नो वासना नैव वासको नैव वास्यता। केवलं केवली भावः स शांत कलन भ्रमः॥१६
यस्य सत्याप्योसत्या वा शून्य एवहि यत्नकः। विलीनस्तस्य कैवल्यात्किमन्यद वशिष्यते॥२०

निर्विकार निर्वाण वह, अनंत अद्वैरूप। निर्विकल्प सो ब्रह्मलखु, वही प्रकाश स्वरूप॥
सर्व जगतको बाधकर, ब्रह्म शुद्ध चिद्जान। होवे अनुभव मोक्ष तब परम रूप पहिचान॥
नशे अविद्या भागवश, हो आवर्णहि दूर। भासे स्वयं प्रकाशकर, निश्चय इकरस पूर॥
वासय वासक वासना, तीनों जहां अभाव। केवल शांत अकल्पना, जानों चेतन भाव॥
भासे सत्य असत्य वपु, होइ जभी मन लीन। शेष एक कैवल्यसो, संशय विपर्य्य क्षीन॥

प्रश्न—कैवल्य भाव की प्राप्ति के लिये, कैसे विचार करना उचित है?

उत्तर—निर्विकल्प (सर्व भेद रहित) सदा अच्युत, सर्व का प्रकाशक चैतन्य स्वरूप मैं हूँ, ऐसा मनन रूप विचार मुक्ति प्रद है॥१६॥

मुनीश्वर वसिष्ट जी कहते हैं कि वे हे रघुकुल भूषण इस संसार के अत्यंताभाव निश्चय होने पर केवल ब्रह्म चैतन्य शेष रहता है, वह चिदसत्ता सर्व जगत् का अधिष्ठान (वास्तविक रूप) है, इस लिये कल्पित रूप जगत् तीनों कालों में सत्य नहीं, किंतु अद्वैत चैतन्य आत्मा एक सत्य है, इस प्रकार विचार (अभ्यास) करने पर अधिकारी मुक्ति पाता है॥१७॥

चिरकाल के अभ्यास करने पर सात्विकी परिणामरूपी वृत्ति से आवर्ण दूर होकर शुद्ध हृदय में ब्रह्मात्मा का अभेद ज्ञान ही मुक्ति है, यह मुक्ति कहीं दूर व दुष्प्राप्य नहीं किंतु तत्वज्ञान की दृढ़ता हुये उसी समय विद्वान् कृत कृत्य होता है॥१८॥

जहाँ वासना, वासक, वास्य त्रिपुटि अत्मिक पदार्थ कोई भी सत्य नहीं तहाँ केवल शान्त चिद्घन अपनी महिमा में (निर्विकार रूप से) सदा स्थित है, इस दृष्टि को पाकर विद्वान् जीवन्मुक्त पद में स्थित होता है॥१६॥

यह जगत् असत्य हो, अथवा भ्रम कर किसी को सत्य भासे, परन्तु जिस अधिकारी का मन भेद रूप मिथ्या वासना से रहित हुआ है, उसको ब्रह्म चैतन्य से भिन्न कुछ सत्य नहीं भासता, अर्थात् शेष, अशेष रूप सर्व प्रपंच तीनों काल में भाव रूप नहीं, किंतु सर्व शब्द, अर्थों से अतीत निर्मल अवशिष्ट चिदसत्ता एक सत्य स्वरूप वेद वाक्यों से निश्चय करने योग्य है॥२०॥

तदिदं तादृशं विद्धि सर्वं सर्वात्मकं च यत् ।देशाद्देशान्तर प्राप्तौ विदोमध्यमनांकितम्२१
चिद्व्योम्नःशांत शामस्थमध्यमेचैवमास्थितम्।जगत्तथैव सलिल मेवाम्र्यादि तथायथा२२
संविन्नभो नतु जगन्नभ इत्यनर्कमात्मन्य वस्थितमनस्तमयोदयंक।
तत्त्वंगभूतमखिलं तदनन्यदेव दृश्यं निरस्त कलनों वरमात्र मारव ॥२३॥
अत्यंताभाव संवित्या सर्व दृश्यस्य वेदनम् । उदेत्ययास्त सर्वेद्य सतिवासति सर्गके॥२४
निर्वाणमेवमिदमातत मित्थमंतश्चि द्वयोम्नआविलमनाविलरूपमेव ।
नानेवनक्व चिदपिप्रसृतंन नानां शून्यत्वमंवर इवांबुनिधौद्रवत्वम् ॥२५॥

निर्विकार सब जगत् में,परमात्म शुद्ध जान । वृत्ति दशो दिश धावती,कर्त्ता अनुभव मान
तरंग तीनों काल में, सागर जानों वार । आदि अंत को जग नहीं, शुद्ध ब्रह्म एक सार ॥
विश्वहु कल्पित ब्रह्मगत,चिदाकाश सत भाव।जगतरूपनहिंहोइ चिद,सबकाजानअभाव
ज्ञान आत्म से बोध हो, सृष्टी जान अभास । ब्रह्मविज्ञ अद्वैत पिख,मध्य शुद्ध चिद्वास॥
कालुष रूपी सृष्टि सब,पूर्ण शुद्ध निर्वाण।रूप ब्रह्म मय जगत् लखु, भेद भाव सब हान ॥

प्रश्न–अद्वैत शुद्ध चैतन्य में जगत् जैसे भासता है वह खोलकर कहिये।

उत्तर–सृष्टि के आदि एक चिदसत्ता थी, उसमें स्वप्न सृष्टि के समान मिथ्या जगत् केवल भ्रांतिकर भास आया है, अतः सर्वाधिष्ठानरूप ब्रह्मात्मा दृश्य से अतीत निर्विकार अर्थात् सदा शुद्ध अद्वैत अनुभव स्वरूप है ॥२१॥

जैसे तरंगों के पूर्व व पश्चात् और मध्य में समुद्र एक (जल ही) है तैसे जगत् के भीतर, बाहर तीनों कालों में शुद्ध ब्रह्म चैतन्य एक है। कल्पित वस्तु अधिष्ठान से भिन्न सत्य नहीं होती, किंतु सर्वत्र व्यापक और मन, वाणी का अगोचर (अविषय) निर्विशेष (शुद्ध) चैतन्य विद्यमान है, यह सर्व वेद वाक्यों से निर्णीत हो चुका है ॥२२॥

श्री वसिष्ट कहते हैं कि हे रामजी! परमात्म देव में कल्पितरूप सब संसार वास्तव दृष्टि से तीनों कालों में नहीं और चित्ताकाश व भूताकाश यह दोनों भी सत्य नहीं, किंतु पर प्रकाश असत्य हैं, अर्थात् स्वयं प्रकाश एकरस चैतन्य आत्मा में भूत, भौतिक रूप जगत् मिथ्या है, वास्तव से सम्पूर्ण जगत् एक चिदाकाश रूप है ॥२३॥

आत्म ज्ञान से सर्व संसार का बाध होने पर विद्वानों को सत्य, असत्य सर्व रचना में अवशिष्ट (शुद्ध) ब्रह्म का निश्चय होता है ॥२४॥

यथार्थ दृष्टि से देखें तब तमो प्रधान माया का कार्य जगत् शुद्ध चिदाकाश में कल्पित है, जैसे आकाश में शून्यता व जल में द्रव्यता आकाश व जल से भिन्न कुछ सत्य नहीं होती तैसे जीव, ईश्वर और जगत् तीनों भासते हुए भी अवशिष्ट (निर्मल) ब्रह्म है ॥२५॥

उत्तम विधान विभास (२०)

महत्पदं ज्ञात्वा वृक्ष मूले वसेत। सच्चिदानन्दात्मानमद्वितीयं ब्रह्म भावयेत् ॥१॥
अहं ब्रह्मास्मीत्युनसंधानं कुर्यात्।सतज्ञो वालोन्मत्त पिशाच वज्जड़वृत्त्या लोकमाचरेत्॥२
स्वरूपानुसंधान विनान्यथा चारपरो न भवेत्। वेदान्त श्रवणंकुर्वन् योगं समारभेत्॥३
आत्मानं चेद्विजानीयाद्यमस्मीति पुरुषः। किमिच्छन्कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत॥४
तमेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मणः। नानुध्यायाद्बहुञ्शब्दान्वाचो विलापनंहितत्।५

ब्रह्मनन्द को जानकर, वृक्ष मूल कर वास। सत चैतन आनन्द वपु, अद्वै ब्रह्म प्रकाश॥
अहं ब्रह्म यहध्यान कर,सब विपर्य्य को बाध।भूत बावरे बाल समी,सभ विहार तू साध॥
आतम चिंतनके बिना,कुछ प्रवृत्ति मति ठान।एक ज्ञानको श्रवणकर,साध योग यह ध्यान
आत्म को ब्रह्म लखे जब, परपूरण में आप। इच्छा जग की किसलिये, करे देह संताप॥
लखुकर ब्राह्मण ब्रह्मको,करे यही फिर ध्यान।बहुत शास्त्रकी आश तजि,नहीं प्रयोजन जान

प्रश्न—ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिये कैसे अभ्यास करने का विधान है ?

उत्तर—सद्गुरु व सत्य शास्त्रों के द्वारा महत्पद (शुद्ध ब्रह्म) को श्रवण किये पश्चात् ज्ञान की दृढ़ता के लिये सर्व आरम्भों को त्यागकर वृक्ष के नीचे निवास करके एकान्त में नित्य ब्रह्म का अभ्यास करना उचित है॥१॥

सर्व ब्रह्म मैं हूँ इस प्रकार से अद्वैत आत्मा का सदा चिंतन करना योग्य है, इस रीति से अभ्यास करने पर अहंता रहित, बालकों के तुल्य व कर्त्तत्व, भोक्तृत्व के अभाव से उन्मत्त (वावरों) के समान और देह आदि के बाध निश्चय से पिशाचों के सदृश तथा बुद्धि आदि के जड़ात्मिक निश्चय से जड़ों की नाईं विद्वान् विचरे अर्थात् सर्व विषयों को त्यागकर अद्वैत चैतन्य स्वरूप का निश्चय करना चाहिये ॥२॥

मुमुक्षु मिथ्या, आहार, व्यवहारों को त्यागकर ब्रह्मात्म की एकता के अभ्यास में नित्य स्थिर रहे, अर्थात् सर्व ओर से मन को रोककर अद्वैत निष्ठा करनी योग्य है ॥३॥

जब अखण्ड (अभेद) निश्चय कर लिया कि सर्व व्यापक अद्वैत ब्रह्म मैं हूँ, इस विचार के दृढ़ होने पर किस भोक्ता के लिये और किस पदार्थ की इच्छा करता हुआ विद्वान् बाह्य प्रवृत्ति व परिश्रम करे। किंतु सदा अन्तर्मुख रहना श्रेयस्कर है ॥४॥

परमात्मदेव को श्रवण करके ब्रह्मात्मा के अभेद निश्चय करने के लिये अनात्म झगड़ों को त्यागकर ब्राह्मण (मुमुक्षु,) सदा ब्रह्माभ्यास करे ॥५॥

यतो निर्विषयस्यास्य मनसो मुक्तिरिष्यते । अतो निर्विषयं नित्यं मनः कार्यं मुमुक्षुणा ॥६
चित्तमेवहि संसारस्तत्प्रयत्नेन शोधयेत्। दृश्यं ह्यदृश्यतां नीत्वा ब्रह्माकारेण चिंतयेत् ॥७
मायाकार्यमिदंभेदमस्ति चेद्ब्रह्मभावनम् । देहोऽहमिति दुःखं चेद्ब्रह्माहमिति निश्चयः॥८
विज्ञेयोऽक्षर तन्मात्रं जीवितं चापिचंचलम्। विहायशास्त्र जालानि यत्सत्यं तदुपास्यताम्॥९
यस्यस्त्रीतस्यभोगेच्छानिः स्त्रीकस्यक्वभोगभूः ।
स्त्रियंत्यक्त्वाजगत्यक्तं जगत्त्यक्त्वासुखी भवेत् ॥ १० ॥

हो भोगों से शून्य मन, जाने मुक्ति सुजान । कारण इसी मुमुक्षु जन, धरे विवेक महान्॥
चित्त यही संसार सब, शोधो तीन शरीर । जग को झूठा जान के, सुमिर ब्रह्म तुम वीर ॥
माया कारज दृश्य सुख,शुद्ध ब्रह्म इकसार। देह आदि सब दुःख मय, ब्रह्म भावना धार ॥
लखु अविनाशी ब्रह्मको,आयुषक्षणक प्रमान। सबशास्त्रों को भूलदे,एक ब्रह्म धर ध्यान॥
नारी संगम काम बल,नारी बिन नहिं काम । तज नारी दुख जाय सब,आनंद ले विश्राम

प्रश्न—किस क्रम से स्वरूपनिष्ठा होकर कैवल्य मुक्ती की प्राप्ति होती है ?

उत्तर—शब्द, स्पर्श आदि सर्व विषयों और सब प्रिय पदार्थों में सत्यता व सुख बुद्धि त्याग देने पर कैवल्य भाव की प्राप्ति होती है इसलिये कल्याण चाहनेवाला अधिकारी जगत् के सर्व पदार्थों से उदासीन हो (राग त्याग) कर स्वात्म में स्थित होवे ॥६॥

परिच्छिन्न अहंकार रूप चित्त ही जन्म, मृत्यु, रूप संसार (बन्ध) का कारण है, ब्रह्म ज्ञान द्वारा उस अभिमान को बाधकर और प्रपंच में सत्य बुद्धि व सुख आशा को त्यागकर मुमुक्षुओं को निरंतर ब्रह्म अभ्यास करना चाहिये ॥७॥

सब जगत् माया का कार्य मिथ्या और क्षण-क्षण में विकारी तुच्छ है, इस प्रकार अद्वैत ब्रह्म की भावना द्वारा दृढ़ निश्चय से जन्म, मृत्यु के बन्धनों से विद्वान् सदा मुक्त होता है ॥८॥

वेद, वेदान्त के अर्थ का अभ्यास बहुत समय तक किया हुआ सफल होता है अर्थात् एकान्त में स्थित हो सब संसार वासनाओं को त्यागकर ब्रह्मात्मा के अभेद चिंतन करने पर कृतकृत्य भाव की प्राप्ति होती है ॥९॥

जिसको स्त्री आदि विषयों का विशेष संग रहता है उस सम्बन्ध के प्रभाव से भोगों की अत्यधिक इच्छा होती है इसलिये भोग की सम्पूर्ण सामग्री और सब कुसंग को दूर से त्यागकर एकान्त में स्थित हो सदा ब्रह्म अभ्यास, वैराग्य को धारण करके अधिकारी कैवल्य भाव को प्राप्त होवे॥१०॥

चित्तंकारणमर्थानामृतस्मिन्सतिजगत्त्रयम्।तस्मिन्क्षीणेजगत्क्षीणंतच्चिकित्स्यंप्रयत्नतः११
सुप्तेरुत्थाय सुप्त्यातंब्रह्मैकंप्रविचिन्त्यताम् । गच्छंस्तिष्ठन्नुपवशञ्शयानोवान्यथापिवा॥१२
वेद शास्त्र पुराणानि पदपांसुमिव त्यजेत्। एकाकी निःस्पृहस्तिष्ठेन्नहिकेन सहालयेत्॥१३
संदिग्धः सर्व भूतानां वर्णाश्रम विवर्जितः। अन्धवज्जड़ वच्चापि मूक वच्च महीं चरेत् ॥१४
यद्यत्पश्यति चक्षुर्भ्यां तत्तदात्मेति भावियेत्। यद्यच्छृणोति कर्णाभ्यांतत्तदात्मेति भावयेत्

सब अर्थों का मूल मन, चित्तहि सब संसार। चित्त बाध हो बाध जग, कीजे यत्न अपार॥
जाग्रत से सोवन तलक, ब्रह्म ध्यान कर नित्त। सब ही चेष्टा होत ही, रखो ब्रह्म में चित्त॥
वेद शास्त्ररु पुरान को, धूली समकर त्याग। आलंबन सब त्याग के, ब्रह्ममाहि तू जाग॥
वर्णाश्रम सब बाधकर, देह गर्व तज मीत। अंधे जड़ अरु मूक सम, व्यवहारहि कर नीत॥
जो २ देखै सुनै सब, है आतम इक सोइ। दिव्य चक्षुकर ज्ञानमय, ब्रह्म दृष्टि सब होय॥

प्रश्न—किस दुर्वासना के त्यागने पर ज्ञान होकर कृतकृत्यता को प्राप्त होता है ?

उत्तर—देह आदि में परिच्छिन्न अहंकार सर्व बन्धनों का मूल और सब अनर्थों का कारण है अर्थात् अभिमान के होने पर स्वप्न सृष्टि के तुल्य विस्तृत संसार भासकर दुःखदायी होता है, गर्व के अभाव हुए सब जगत् का बाध होने पर ब्रह्मात्म ज्ञान की दृढ़ता द्वारा विद्वान् कृतार्थ होता है ॥११॥

चलते, स्थित और शयन करते हुए नित्य ब्रह्मात्मा की एकता का तीव्र अभ्यास करना चाहिये इस प्रकार सर्व भ्रांति दूर होकर स्वरूपानंद की प्राप्ति होती है ॥१२॥

जैसे पदरज (धूलि) को धोकर पांव निर्मल होते हैं तैसे वेद शास्त्रों व पुराण आदि की उपेक्षा करके अर्ध प्रबुद्धों को ब्रह्म विचार से संसार के सम्पूर्ण पदार्थों में आसक्ति को त्यागकरके एकान्त में स्थित हो ब्रह्म अभ्यास करने से शीघ्र मुक्ति होती है ॥१३॥

मुमुक्षुओं को उचित है कि वर्णाश्रम और देह आदि के अभिमान को त्यागकर ज्ञानाग्नि से सर्व संसार को विदग्ध (बाध) करके जगत् को सत्य नहीं देखने से अन्धवत् व स्वरूप को वाणी का अविषय जानने पर मूकवत् और देह आदि बुद्धि पर्य्यंत सर्व को अचैतन्य जानकर जड़ों के तुल्य विचरें अर्थात् विपर्य्यों से रहित विद्वान् अद्वैत ब्रह्म को निर्धर्मक निश्चय करके विचरे॥१४

जो पदार्थ चक्षु कर जाने जाते हैं और जो श्रोत्रकर सुने जाते हैं उन सर्व पदार्थों को मिथ्या निश्चय कर मुमुक्षु एक ब्रह्मात्मा की भावना करे, तभी अधिकारी कृतकृत्य भाव को प्राप्त हो सकता है ॥१५॥

ध्येय त्यागमतोजस्त्रं ध्यायता देह धारणा । भोगेष्वरति रभ्यासाद्वर्द्धिनेयालता यथा।।१६
व्युत्पत्तिमनुयातस्य पूरयेच्चेत सोन्वहम् । द्वौभागौशास्त्र वैराग्येद्वौध्यान गुरु पूजया।।१७
प्रज्ञा विचार वशतः सममेवसदा सुत।आत्मावलोकनं तृष्णा सं त्यागं च समाहरेत्।।१८
भोगपूगे गता स्वादे इष्टे देवे परावरे । परे ब्रह्मणि विश्रांतिरनंतोदेति शाश्वती ।।१६
क्रमणानेन विहरन्विचार्यात्मानमात्मना । विश्रांति मेहिविततेपदे पद्म दले चण ।।२०

उचित मुमुक्षु नित्य यह, ध्येय वासना त्याग । होइ विरक्ती चित्त दृढ़, लहे ब्रह्म अनुराग।।
निश्चय व्यत्पन होइकर, जनविरक्त दो भाग । करना चिंतनब्रह्मका, सेवो गुरु बड़ भाग।।
आतम विषयक बुद्धिकर, अभ्यासहिदृढ़धार।मूल वासना त्यागसब,आतम दर्शन सार।।
तज रस बुद्धी भोगमें,हो ब्रह्मातम ध्यान । पावे तिसकर परम पद, विश्रान्ति लहि ज्ञान।।
कहे प्रथम तिस यत्नकर ब्रह्मातम विश्राम।चितवो आतम नित्यप्रति,होइमुक्तिअभिराम।।

प्रश्न—मुमुक्षु, कैसी धारणा करने पर अद्वैत ज्ञान को प्राप्त होता है ?

उत्तर—देह में अहंता, जगत् में सत्यता और आत्मा में कर्तृत्व, भोक्तृत्व तीनों ध्येय (विपर्य्य) वासनाओं को ब्रह्मज्ञान से बाध करके सर्व इष्ट भोगों से उदासीन होकर ज्ञान को ऐसा बढ़ावे कि जैसे जल के सींचने से लता बढ़ती है ।।१६।।

पद, पदार्थों के जानने वाला अधिकारी दिन के दो भाग में वेदान्तार्थ का विचार करे शेष समय सद्गुरु की संगति करे तब ज्ञान के योग्य होता है ।।१७

हे तात् ! तत्त्वज्ञान, वासनाक्षय, मनोनाश इन तीनों का सम काल नित्य अभ्यास करना चाहिये इससे सर्व विपर्य्य दूर होकर अद्वैत ज्ञानरूप निर्विकल्पता को पाकर कृत कृत्यता प्राप्त होती है ।।१८।।

सर्व इष्ट (प्रिय) पदार्थों में सुख बुद्धि व सत्यता को त्याग करने से ब्रह्मात्मा का अपरोक्ष ज्ञान होकर नित्य मुक्ति की निर्विघ्न प्राप्ति होती है, अर्थात् जिन-जिन बान्धवों को जीव प्यारे समझता है वह सर्व दृढ़ बन्धनरूप हैं । कोई पदार्थ संसार में सुखदाई नहीं, अतः सब से प्रीति त्यागकर परमार्थ की धारणा श्रेयस्कर है ।।१६।।

पहले कहे अनुसार देह यात्रा करते हुये नित्य ब्रह्माभ्यास में तत्पर अधिकारी को शीघ्र ब्रह्म बोध प्राप्त होकर ब्रह्मानन्द में दृढ़ स्थिति होती है, इसलिये मुमुक्षुओं को सदा बाह्य वासना व जगत् की सत्यता को त्याग कर ब्रह्मात्मा का चिंतन करना योग्य है, इस प्रकार के अभ्यास कर विद्वान् अद्वैत ज्ञान की दृढ़ता द्वारा निर्वाण पद में विश्राम पाता है ।।२०।।